Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शंख कर सोहे चक्र आदि मन मोहें, अहो !
सिर पै किरीट, कान-कुण्डल ललाम हैं ।
पीत-पट धारे, कञ्ज-नेत्र रतनारे प्यारे —
हार मणि-कौस्तुभसे, हृदयाभिराम हैं ॥
ठाकुर त्रिलोककी तो शोभाश्री अनूठी ही,
जिसको विलोक, लोक बनते सकाम हैं ।
कहे 'कवि पुष्कर' नवाके शीश, भाव भरे,
चार भुजाधारी, विभु विष्णुको प्रणाम हैं ॥

शुभ कामनाओं सहित

नरोत्तमदास भाऊ ज्वैलर्स
४३२ लेमिंगटन रोड
बम्बई-४.

के

सौजन्यसे

तार: "दासनरोत्तम"

फोन नं. ३५६३३३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

- प्राचीन-अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञान की प्रतिनिधि
- पुरुषार्थ प्रतिपादक
- प्रसन्न-गम्भीर पत्रिका

चिन्तामणि

संस्थापक : अनन्तश्रीविभूषित पू. पा. स्वामी श्रीअखण्डानन्दजी सरस्वती महाराज

वर्ष ५ अंक २

★

सम्पादक :

ब्र. प्रेमानन्द 'दादा'
विश्वम्भर नाथ द्विवेदी
आनन्दकानन
सी. के. ३६/२०
वाराणसी - १
फोन : २६८३

वार्षिक मूल्य : चार रुपये मात्र
एक प्रति : सवा रुपया मात्र

विदेश में

वार्षिक मूल्य : छः शिलिंग

व्यवस्थापक
सत्साहित्य प्रकाशन ट्रस्ट,
'विपुल' २८/१६
रिजरोड, मलाबार हिल
बम्बई - ६

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

★ विषयक्रम

१.	स्वस्त्ययन	ऋग्वेद	१७३
	● निगम-मन्थन		
२.	पुरुषसूक्त	यजुर्वेद	१७४
३.	पावन कर्तव्य	श्री ए० सी० कामाक्षिराव	१७९
४.	श्रीराधा-तत्त्व-रहस्य	स्वामी श्री करपात्री जी	१८०
५.	धर्मके उपादान	महाराजश्री	१९२
६.	शाङ्करभाष्य : एक अध्ययन	स्वामी श्रीसच्चिदानन्देन्द्र सरस्वती	१९६
७.	तमिल प्रदेशमें शैवधर्म	डा० पी० जयरामन	२०३
८.	तीन नान्दी श्लोकोंमें कालिदास द्वारा प्रतिपादित सारभूत तत्त्व	श्री टी० के० गोपालस्वामी	२०९
९.	महामहोपाध्याय श्रीहाराणचन्द्र भट्टाचार्य	...	२१६
१०.	मेरा अनुभव, विश्वास और आशा	श्रीमती उर्वशी ज० सूरती	२१९
११.	क्या स्मृति प्रमाण है ?	श्री रामनारायण त्रिपाठी	२२१
१२.	अमरत्वका जयगान है जीवन	'प्रदीप'	२३३
१३.	निदाघका निर्माण	वि० ना० द्विवेदी	२३४
१४.	महाकवि माघका वैदुष्य	श्री टी० के० गोपालस्वामी अय्यंगार	२३७
१५.	सिद्धोंकी गाथाएँ	'ध्यान-सम्प्रदाय'से	२४६
१६.	ऋग्वेदमें सरस्वतीका मानसिक रूप	डा० मुहम्मद इसराइल खाँ	२४८
१७.	देवता और पौरुष	श्री० पी० एन० पट्टाभिराम शास्त्री	२५३
१८.	जब भगवान्को प्रमाण देना पड़ा	वाजपेयं श्रीरङ्गाचार्य	२६३
१९.	पण्डितराज जगन्नाथकी भक्ति	डा० वि० कृष्णस्वामी अय्यंगार	२६५

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२०. मीमांसकोंका 'अपूर्व' क्या है ? श्रीचिन्नस्वामिशास्त्री २७३
२१. डायरीके पन्ने २८१
२२. वेद-भागवत सारस्वत श्री जगन्नाथ शर्मा २८५
२३. महाराजश्रीके पत्र २९२
२४. न्यूयार्ककी इम्पायर बिल्डिंग और साधना श्रीहरिकिशनदास अग्रवाल २९४
२५. सन्त नामदेव श्रीयशवन्त बलवन्त क्षीरसागर २९६
२६. होनहार बिरवानके होत चिकने पात ३०१

ENGLISH

27. SEED AND THE SOUL (Individual)—Swami Akhandananda Saraswati. 311
28. Smoking, a big Killer 317

● विशेष

सिद्धियोंमें मत फँसो १८६, सेवा लेना भी धर्म है १९०, एकाग्रताकी करामात १९१, भगवान् बुद्धका मनन १९५, देवदूत जेरोस्टर या जरदस्तु १९९, पैगम्बर मुहम्मदका उपदेश २०३, शीतल प्रकाश २२०, उनका स्नेह २२५, नाम ही ध्यान और प्रेमका कारण २३१, याचना अच्छी या विष पीना २४५, कब मिलोगे ? २५२, कूड़ा-अमृत २७२, अद्वितीय तत्त्व २७७, प्रेम, सेवा और आश्रय २८०, जीवन-सन्देश २८४, प्रभु ईशाकी ललकार २९३ ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विद्वानोंकी दृष्टिमें 'चिन्तामणि'

१. श्री टी० के० गोपालस्वामी अय्यङ्गार

संस्कृतविभागाध्यक्ष, श्रीवेङ्कटेश्वर विश्वविद्यालय तिरुपति (A. P.)

आपकी श्रेष्ठ पत्रिका 'चिन्तामणि' यथासमय मिली। यह देखकर अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि इसमें मनोहर विषयोंका प्रसन्न-गम्भीर शैलीसे प्रतिपादन किया जाता है। यद्यपि हम हिन्दी भाषाके विद्वान् नहीं हैं, तथापि संस्कृत भाषाका परिचय होनेके कारण वह हमारे लिए सुबोध ही लगती है।

२. डा० श्री एन० एस० दक्षिणामूर्ति

हिन्दी प्राध्यापक, मैसूर विश्वविद्यालय

चिन्तामणि'का ५-१ अङ्क प्राप्त हुआ। अनन्त धन्यवाद। इसके लेखक बहुत सुन्दर हैं। हमारी युनिवर्सिटी लाइब्रेरीके लिए गत वर्षोंके अङ्क चाहिए। तदर्थ आर्डर शीघ्र ही भिजवा दूँगा। एक निवेदन है - चिन्तामणिमें प्रकाशित कुछ अच्छे लेख : भक्तिरसकी माधुरी, ध्यानका रहस्य जैसे लेख कन्नडमें प्रकाशित करनेका विचार कर रहा हूँ। आप अनुमति देंगे, ऐसी आशा है। अगले अङ्कके लिए मैं अपना लेख भेजूँगा।

३. श्री पि० सुब्रह्मण्य भट्ट

कन्यान ग्राम, पो० कन्यान, दक्षिण कन्नड जिला

महाराजश्रीके एक निबन्धका विशद विवेचन करते हुए एवं भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए भट्टजीने लिखा है कि 'यह विषय महा-महापण्डित सहृदयोंके हृदयमें भी अत्यन्त आश्चर्य और आनन्द प्रकट करते हैं और इसी प्रकारके 'चिन्तामणि'में प्रकाशित दूसरे निबन्ध भी अतिशय कौतुहलजनक हैं। अपनी बुद्धिके अनुसार यत्र-तत्र देखकर मैंने यह निश्चय किया है। मैं थोड़ी-थोड़ी हिन्दी जानता हूँ और दूसरोंसे पढ़वाकर सुनता हूँ, फिर भी हिन्दी भाषाके साथ मेरा सम्बन्ध है। आप मुझे हिन्दी भाषासे अनभिज्ञ जानकर मेरा विस्मरण न कर दें—यह प्रार्थना है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत कथा

इस वर्ष वैशाख कृष्ण ५ (१६ अप्रैल) से वैशाख शुक्ल ११ (६ मई) तक परमार्थ-आश्रम (हरिद्वार) में महामण्डलेश्वर अनन्त श्री स्वामी भजनानन्द सरस्वती जी महाराज की अध्यक्षता में अनन्त श्री सर्वतन्त्र स्वतन्त्र निखिल शास्त्र-निष्णात परम पूज्य **श्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती जी महाराज** २१ दिनों में सम्पूर्ण श्रीमद्भागवत का प्रवचन करेंगे।

- कौशिकी संहिता में २१ दिन की भागवत कथा का बहुत माहात्म्य है।
- हरिद्वार के भी परम पावन तीर्थ सप्तस्रोत पर यह कथा हो रही है।
- वेदान्त एवं श्रीमद्भागवत के देश के सर्वश्रेष्ठ विद्वान् एवं साधु-समाज के सर्वमान्य अध्यक्ष के श्रीमुख से यह कथा-श्रवण का सुअवसर है।
- अब तक श्री महाराज जी सप्ताह या पाक्षिक भागवत-प्रवचन ही करते रहे हैं। यह तीन सप्ताह के विस्तृत प्रवचन का सौभाग्य आपने 'परमार्थ-आश्रम' को सर्वप्रथम दिया है।
- हरिद्वार-ऋषीकेश के तथा बाहर के भी बहुत अधिक विरक्त, महात्मा, विद्वान्, भक्त कथा-श्रवण के लिए पधारेंगे। उनके दर्शनों का सुयोग सहज प्राप्त होगा।

जीवन में ऐसे परम पावन सुयोग वार-वार प्राप्त नहीं होते। अतः समय निकाल कर अवश्य कथा-श्रवण करने पधारें। अपने मित्रों, सम्बन्धियों, परिचितों को भी सूचना और आने की प्रेरणा दें।

अपने आगमन की सूचना ५ अप्रैल तक नीचेके पते पर अवश्य भेजें कि आपके साथ कितने व्यक्ति (कितनी महिलाएँ और कितने पुरुष) आवेंगे। कथा के समय भीड़ अधिक होगी। पहिले सूचना मिलने पर आपके ठहरने की ठीक व्यवस्था की जा सकेगी। अपना विस्तरा अवश्य साथ लावें।

—स्वामी धर्मानन्द सरस्वती
अध्यक्ष परमार्थ-आश्रम
सप्तसरोवर-हरिद्वार।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्टके प्रकाशनोंके बिक्री-केन्द्र

१—'विपुल'
२८।१६, रिजरोड
मालबार हिल, बम्बई—६

२—आनन्दकानन
सी० के० ३६।२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी (उ० प्र०)

३—श्री उड़ियाबाबा आश्रम
पो० वृन्दावन (मथुरा) (उ० प्र०)

४—विद्यावारिधि-पुस्तकालय
मोती बाजार, हरिद्वार (उ० प्र०)

५—सत्साहित्य-ग्रन्थागार
दुकान नं० १६,
पुराना मोटर स्टैण्ड
गंजीपुरा जबलपुर (म० प्र०)

६—सर्वोदय साहित्य-भण्डार
तकियापारा, दुर्ग (म० प्र०)

७—हिन्दी बुक सेन्टर
दरियागंज (मोतीमहलके पीछे)
दिल्ली—६

८—श्रीहरिकृष्ण धार्मिक पुस्तक भण्डार
बाजार राजपूता
पानीपत (हरयाणा)

९—भारतीय पुस्तक-भण्डार
नानीगली, जगदीश रोड
उदयपुर (राजस्थान)

१०—श्री मुन्शी राममनोहर लाल
नयी सड़क, दिल्ली—६

११—श्री सुन्दरलाल
लखनऊ-चिकनसाड़ी-हाऊस
चौक, लखनऊ—३ (उ० प्र०)

१२—सर्वोदय साहित्य भण्डार
महात्मा गाँधी मार्ग
इन्दौर (म० प्र०)

१३—सहयोगी पुस्तक भण्डार
सी० पी० टैंक
बम्बई—२

14—The International Book Service
Deccan Gymkhana
Poona–4

15—Oriental Book Centre
Manek Chowk
Near Ranina Hajira,
Ahmedabad–1

१६—श्री मधूसूदन शास्त्री
गीता विद्यालय, जामनगर
(गुजरात)

१७—श्री सियाराम शर्मा
विवेक बिल्डिंग, कानपुर

१८—श्री ब्रजमोहन
C/o सौदागरमल
प्यारेलाल
जी० टी० रोड
मुजफ्फर नगर

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चिन्तामणि
फरवरी, '७१
वर्ष : ५ अङ्क : २

स्वस्त्ययन

(ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त ६३, मन्त्र ३)

ॐ येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः
पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः ।
उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ
आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये ॥

पृथिवी माता जिनके लिए मधुर पय=जल अथवा क्षीर देती है, असीम द्युलोकरूप अदिति माता भी मेघोंसे समृद्ध होकर जिनके लिए अमृतकी वर्षा करती हैं; उन श्लाघनीय-शक्तिशाली, धर्मात्मा, स्वकर्म-परायण पृथिवीपुत्र प्राणियोंके लिए हम अविनाशी जीवनके पथपर चलनेका उत्साह एवं प्रेरणा देते हैं।

★

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

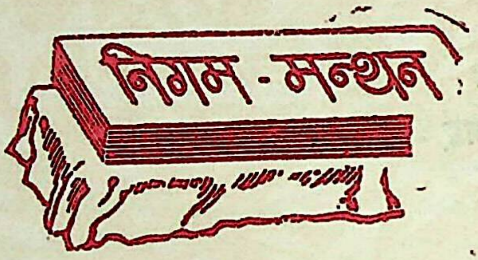

पुरुषसूक्त

(ऋग्वेद १०।९०, यजुर्वेद अध्याय ३।)

ॐ यत्पुरुषेण हविषा देवा यज्ञमतन्वत।
वसन्तो अस्यासीदाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ ६ ॥

देवताओंने उसी उत्पन्न द्वितीय पुरुषको हविष्य मानकर उसीके द्वारा मानस-यज्ञका अनुष्ठान किया। इस यज्ञमें वसन्त ऋतु आज्यके रूपमें ग्रीष्म ऋतु इन्धनके रूपमें और शरद् ऋतु हविष्यके रूपमें संकल्पित की गयी।

जब पूर्वोक्त क्रमसे शरीरोंकी उत्पत्ति हो गयी तब देवताओंने उत्तर-सृष्टिकी सिद्धिके लिए यज्ञ करनेका निश्चय किया; परन्तु उस समय कोई वाह्य द्रव्य उत्पन्न नहीं हुआ था। अतः यज्ञके लिए कोई दूसरा हविष्य नहीं था। ऐसी परिस्थितिमें उन्होंने आदि पुरुषकी आराधनाके लिए द्वितीय पुरुषके शरीरको ही हविष्यके रूपमें मनसे कल्पित किया और पुरुषसे ही पुरुषकी आराधना की। पहले सामान्य हविके रूपमें पुरुषको संकल्पित किया और अनन्तर विशेष हविके रूपमें वसन्तादिका।

वेङ्कटनाथका कथन है कि द्वितीय पुरुषको ही अश्वके रूपमें माना गया और वही हविष्यका मुख्य रूप है। कार्यरूप अपने कारणसे अभिन्न है—यह दृष्टि ही यज्ञ है। वसन्तको आज्य इसलिए कहा गया कि वह रसोंका उत्पादक है। ग्रीष्म शोषक होनेसे इध्म है। अन्नोत्पादिका शरद् ऋतु हविष्य है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एक टीकाकार कहते हैं कि वसन्त ऋतु आज्यप्रचुर है। ग्रीष्ममें पलाशादि अधिकतासे प्राप्त होते हैं और शरद् शस्य-प्रचुर है। अतः मानस-यज्ञमें आज्यादिके रूपमें इनका ध्यान होता है।

शुक्ल यजुर्वेदसंहिता अध्याय ३१वेंमें चौदहवीं कण्डिकाके रूपमें है। उवटने इसके भाष्यमें कहा है कि जैसे देवताओंने यज्ञ किया, वैसे ही योगी भी अमृतस्वरूप उद्दीप्त इस आत्मपुरुषके द्वारा ही आत्मयज्ञ सम्पादन करते हैं। इसमें वसन्त सात्त्विकगुण है, ग्रीष्म राजस और शरद् तामस। योगी इन्हीं तीन गुणोंका आत्मयज्ञमें हवन करते हैं।

किसी-किसीके मतमें सीमित अहं और इदंको असीममें समर्पणकी यह एक प्रक्रिया है। योगियोंकी रीतिसे कार्यको कारणमें लीन करनेकी पद्धति।

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अजयन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ ७ ॥

वही द्वितीय पुरुष यज्ञका साधन हुआ। मानस यज्ञमें उसीको पशु भावनासे यूपमें बाँधकर प्रोक्षण किया गया; क्योंकि सारी सृष्टिके पूर्व वही पुरुषरूपसे उत्पन्न हुआ था। इसी पुरुषके द्वारा देवताओंने मानस-याग किया। वे देवता कौन थे? वे थे सृष्टि-साधन योग्य प्रजापति आदि साध्य देवता एवं तदनुकूल मन्त्रद्रष्टा ऋषि। अभिप्राय यह है कि उसी पुरुषसे सभीने यज्ञ किया।

वेङ्कटनाथने पुरुषको अश्व कहा है और ऋषियोंकी संख्या सात बतलायी है।

शुक्ल यजुर्वेदसंहितामें यह नवीं कण्डिकाके रूपमें है। उवट भाष्यमें कहा गया है कि जैसे अग्निष्टोम यज्ञमें बर्हिसे प्रोक्षण करनेपर पुरुष उत्पन्न होता है, वैसे ही आत्मयज्ञमें प्राणायामके द्वारा दीप्त होकर पुरुष उत्पन्न होता है, दिव्य ज्ञानकी उत्पत्ति होती है। इसीसे इन्द्रादि देवता, साध्य और ऋषि यज्ञ करते हैं। कपिल आदि ऋषि भी। प्रणवाधिष्ठित पुरुषसे ही यज्ञ सम्पन्न होता है।

महीधरने 'प्रौक्षन्' का अर्थ किया है कि प्रोक्षणादि संस्कारोंसे संस्कृत किया गया। इनके मतमें भी सायणके समान ही यह मानस-याग है।

एक व्याख्याकारने इस प्रसङ्गमें शाबल्य ब्राह्मण उद्धृत किया है। उसका भावार्थ यह है—"पाद-नारायणसे मूलप्रकृति प्रकट हुई। पाद-नारायणके शासनसे उसने महान्, अहंकार आदि सूक्ष्म पदार्थोंको जन्म दिया। सूक्ष्मसृष्टि सम्पन्न हो जानेपर पाद-नारायणने स्थूल सृष्टिके लिए चतुर्मुख पुरुषका अभिध्यान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया। उस ध्यानसे चतुर्मुख ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई। वे जन्मसे ही भूमिमें सर्वातिशायी थे। वे सब कार्य करनेमें समर्थ वृद्धकाय ब्रह्मा मौन रहे। उनसे अनिरुद्ध नारायणने पूछा—'ब्रह्मन्! तुम मौन क्यों हो?' ब्रह्माने कहा—'अज्ञानके कारण।'

अनिरुद्ध नारायणने कहा—'ब्रह्मन्! तुम अपनी इन्द्रियोंको ही देवता एवं ऋत्विज बनाकर और अपने शरीरको हवि मानकर अग्निके रूपमें मेरा ध्यान करो तथा मुझ अग्निमें आत्मनिवेदन कर दो। मेरे अंगके स्पर्शमात्रसे तुम्हारा शरीर बढ़ जायगा और तुम जगत्के कोश बन जाओगे। फिर तुम प्राणियोंका निर्माण करके स्रष्टा हो जाओगे। इस सृष्टिको जो जानता है वह इसी जन्ममें मुक्त हो जाता है।''

इस उद्धरणसे स्पष्ट हो जाता है कि आदि पुरुषसे उत्पन्न द्वितीय पुरुष क्या है और उसका यह मानस-यज्ञ क्या है? यह यज्ञ पश्वादि-रूप सृष्टिकी उत्पत्तिसे पूर्वका ही है, अतः मानस है और आत्मसमर्पण रूप है।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम्।
पशून् ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्च ये॥ ८॥

इस यज्ञमें सर्वात्मक पुरुषका हवन किया जाता है। इसी मानस यज्ञसे दधिमिश्रित आज्य-सम्पादन किया गया अर्थात् सभी भोग्य पदार्थोंका निर्माण हुआ। इसी यज्ञसे वायुदेवताक आरण्य पशुओंका निर्माण हुआ। जो ग्राम्य पशु हैं, उनका भी।

सर्वात्मक पुरुषका हवन जिस यज्ञमें किया जाता है उसको कहते हैं—सर्वहुत्। 'सर्वहुतः' यह 'यज्ञात्' का विशेषण पञ्चमी एकवचन है।

वेङ्कटनाथने 'सर्वहुत्' शब्दका अर्थ किया—आश्वमेधिक अश्व। उसीसे पृषदाज्य बना। इसके बाद देवताओंने पशुओंका निर्माण किया।

शुक्लयजुर्वेद संहितामें यह छठी कण्डिका है। उवटका कहना है कि अग्निष्टोम यज्ञकी प्रक्रियाके अनुसार ही इस आत्म-यज्ञकी भी प्रक्रिया है। इस सम्पूर्ण आत्म-यज्ञसे उत्पन्न पृषदाज्यके द्वारा योगी सम्पूर्ण प्राणियोंको हथेलीकी भाँति देखते हैं। उनके ज्ञान-तेजसे कुछ भी छिपा नहीं रहता।

महीधरका सायण सदृश है। जिसका भाव मूल-मन्त्रके अनुवादमें ही दे दिया गया है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

द्वितीय पुरुषने आदि पुरुषको सब कुछ हवन कर दिया अर्थात् चतुर्मुख ब्रह्माने पुरुषोत्तम भगवान्को सब कुछ समर्पण कर दिया।

जीवात्माने अपने आत्माको ही अमूल्य रत्न कौस्तुभके रूपमें भगवान्के प्रति समर्पित कर दिया।

कार्यरूप उपाधि कारणरूप उपाधिमें लीन हो गयी और द्वितीय पुरुष आदि पुरुषसे एक हो गया।

तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ॥ ९ ॥

पूर्वोक्त सर्वहवनात्मक यज्ञसे ऋचाएँ और साम उत्पन्न हुए। उस यज्ञसे ही गायत्री आदि छन्दोंका जन्म हुआ। उसी यज्ञसे यजुष्की भी उत्पत्ति हुई।

वेङ्कटनाथने अपनी व्याख्यामें कहा है कि ऋक्, साम और यजुष् इन तीनोंकी उत्पत्ति उस यज्ञसे हुई। छन्दका अर्थ उन्होंने तीनोंका अधिष्ठान किया है, अर्थात् वेद छन्दोंमें ही होते हैं।

शुक्ल यजुर्वेदसंहितामें यह सातवीं कण्डिका है। उवटका कहना है कि देवता यज्ञसे वेदोंको प्रकट करते हैं। जब आत्म-यज्ञ प्रणवसे दीप्त होता है तब छन्द स्वयं ही ज्ञानसे अधिष्ठित हो जाते हैं। जो इन सबको परमात्मामें जान लेता है उसको सब वाङ्मय ज्ञानस्वरूप हो जाता है।

महीधरका व्याख्यान है कि इन वेदों और छन्दोंके विना यज्ञकी सिद्धि नहीं हो सकती, इसलिए इस प्रसंगमें उनका वर्णन है।

द्वितीय पुरुष ही यहाँ यज्ञ है। उससे ऋग्वेदकी इक्कीस, सामवेदकी सहस्र, यजुर्वेदकी एक सौ नौ शाखाएँ तथा गायत्री आदि छन्द प्रकट हुए। यहाँ उत्पत्तिका अर्थ भिन्न-भिन्न सर्गमें प्रथम उच्चारणका विषय होना है। यद्यपि वेद ब्रह्मासे भी उत्पन्न नहीं होते तथापि यहाँ 'उत्पत्ति' शब्दका अर्थ प्रथमोच्चारण ही विवक्षित है, इसलिए कोई दोष नहीं है। यदि यहाँ द्वितीय पुरुषका उच्चारण न मानकर प्रथम पुरुषसे ही वेदोंकी उत्पत्ति माने तो, वहाँ भी सृष्टिके अनादि प्रवाहमें लीन वेदोंका प्रकाशकत्व ही परमेश्वरमें है, कर्तृत्व नहीं।

वेद तैत्तिरीय उपनिषद्के अनुसार मनोमय कोशमें निवास करते हैं। अत-एव सुषुप्तिकालीन आनन्दमय कोशमें वे लीन हो जाते हैं। देखिये, 'तस्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यजुरेव शिरः' और सुषुप्तिका वर्णन तत्र 'वेदा अवेदा भवन्ति', यही कारण है कि तत्त्वज्ञ पुरुष जब अविद्यावरणसे निर्मुक्त होता है और अपने प्रत्यक् चैतन्याभिन्न-रूपमें स्थित होता है, तब वह पौरुषेयापौरुषेय सर्वविध वाक्-प्रवाह और तत्कृत विधि-निषेधसे परे हो जाता है।

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ॥१०॥

उस पूर्वोक्त यज्ञसे यज्ञोपयोगी अश्वोंका जन्म हुआ। जिनके दोनों और दाँत होते हैं, उनका भी जन्म हुआ। उसीसे गायोंका भी जन्म हुआ और उसीसे बकरी-भेड़ें भी पैदा हुईं।

शुक्ल यजुर्वेदसंहितामें यह आठवीं कण्डिका है। उवटने लिखा है कि पशुओंके विना यज्ञ सिद्ध नहीं हो सकता। महीधरका भी यही मत है।

विष्णुपुराणमें पूर्व मुखसे ऋग्वेद एवं गायत्री आदि छन्दोंकी, दक्षिण मुखसे यजुष् एवं त्रिष्टुप् आदि छन्दोंकी, पश्चिम मुखसे सामदेव एवं जगती आदि छन्दोंकी और उत्तर मुखसे अथर्ववेद एवं अनुष्टुप आदि छन्दोंकी सृष्टिका वर्णन है (देखिये, प्रथम अंशका अध्याय ५, श्लोक ५३-५६)। इसीके साथ-साथ यह वर्णन है कि उस द्वितीय पुरुषके वक्षःस्थलसे भेड़ें, मुखसे बकरियाँ, उदरसे गौएँ, चरणोंसे घोड़, हाथी, गधे, नीलगौएँ, हरिन आदि उत्पन्न हुए।

इसका अभिप्राय यह है कि यह समग्र सृष्टि भगवान्से ही प्रकट हुई है, भगवान्में ही स्थित है। यह-वह, तू-मैं सब परमात्माका ही स्वरूप है। इन सबको परमात्मामें लीन करके मनसे अभेदका चिन्तन करना चाहिए। कार्य-कारणका अभेद-चिन्तन ही वस्तुतः यज्ञ है। इससे राग-द्वेषादिकी निवृत्ति तो होती ही है, अपने 'मैं'की भी वलिवत् बलि चढ़ जाती है। यह आराधनाकी पराकाष्ठा है। योगकी सर्वोच्च स्थिति है और महावाक्योंके द्वारा प्रत्यक् चैतन्या-भिन्न ब्रह्मतत्त्वका बोध हो जानेपर समग्र दृश्य-प्रपंच अपने स्वरूपमें बाधित अपना स्वरूप ही है। इस यज्ञका परम तात्पर्य अनात्माके बाधमें ही है।

• • •

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पावन कर्तव्य

ए० सी० कामाक्षि राव

मद्रास क्रिश्चियन कॉलेज, ताम्बरम, मद्रास

भाषा, धर्म एवं भौगोलिक वैविध्यके बावजूद आसेतु हिमाचल व्याप्त इस विशाल भारत भूमिकी संस्कृति एक है, उसकी भावना, साधना एवं प्रवृत्ति एक है। परन्तु आज देशभरमें प्रादेशिक भाषा-चैतन्य आवश्यकतासे अधिक जागरूक होनेके अलावा विकराल रूप भी ग्रहण करता जा रहा है और इससे राष्ट्रका समग्र वातावरण दूषित-सा हो रहा है। एक राष्ट्र, एक संस्कृति, एक हृदयकी भावनाको सुदृढ़ बनानेकी आवश्कता आज जितनी अधिक है, उतनी इसके पहले नहीं थी। भारतके विभिन्न भाषा-शरीरोंके भीतर स्थिर सांस्कृतिक चैतन्य-धारारूपी आत्माका अनुभव करना तथा कराना आज प्रत्येक देशभक्त नागरिकका परम पावन कर्तव्य हो गया है।

हमारे प्राचीन सन्तों, मनोषियों और कवियों आदिने समग्र भारतकी एक आत्माको पहचाना और उसीका गानकर एक मानवताका सुदृढ़ उद्घोष किया। उदाहरणार्थ, हिन्दीके महाप्राण कवि निराला और तमिलके मनीषी कवि सुब्रह्मण्य भारती समकालीन नहीं थे, दोनोंकी भाषा भी एक नहीं थी; किन्तु दोनों कवि मानवतावादी थे, दोनोंके संवेदन मानवीय थे और स्वर आशा तथा आस्थासे अनुप्राणित। मानवीय संस्कृतिपर दृढ़ आस्था रखते हुए दोनोंने जीवनकी विकासोन्मुख प्रवृत्तियोंको पहचाना, संक्रान्तियुगीन मानवकी विस्थापित चेतनाको सँभाला, उसे नवीन स्तरपर प्रतिष्ठित किया और भारतकी सांस्कृतिक गरिमाका आलोकमय वातावरण प्रस्तुत किया। दोनों कवि साधारण परिवारमें जन्मे थे; इसलिए जीवनकी बहुविध भूमियोंके अन्तरंगमें प्रविष्ट होकर जीवन तथा जगत्‌के सत्यका आकलन किया।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीराधा-तत्त्व-रहस्य

• अनन्तश्री स्वामी करपात्रीजी महाराज

माधुर्यसार-सर्वस्वकी अधिष्ठात्री श्रीराधा भगवान् श्रीकृष्णकी प्राणेश्वरी हैं। उनमें युगपद् अनेक निधियाँ सामञ्जस्यपूर्वक निवास करती हैं। वे लोकोत्तर प्रेम-विलासके वैभवकी निधि हैं। कैशोर-सुषमाकी निधि हैं। वैदग्धी-मधुर अंग-भंगिमाकी निधि हैं। लावण्य-सम्पदाकी निधि हैं। महारसकी निधि हैं। कन्दर्प-लीलाकी निधि हैं। सौन्दर्य-सुधाकी अनुपम निधि हैं। मधुपति परमानन्दकन्द नन्दकिशोरकी सर्वस्व-निधि हैं। श्रीराधारानीकी जय हो, जय हो। उनके समान और कौन है? (देखिए, रा० सु० नि० २४४)

परमानन्दसुधा-सिन्धु भगवान् श्रीकृष्णके माधुर्यसार-सर्वस्वकी स्वामिनी श्रीराधा उनकी आत्मा ही हैं, फिर भी लीला-विशेषके अवसरपर वे श्रीकृष्णको भी अत्यन्त दुर्लभ प्रतीत होती हैं। बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र, अमलात्मा परमहंसोंके लिए जिनके चरणोंके चिह्न भी दुर्गम हैं, वे मधुसूदन कभी-कभी श्रीराधारानीके वसनाञ्चलकी चंचल लीलासे उत्थित धन्यातिधन्य पवनके स्पर्शसे अपने आपको कृतार्थ समझते हैं। श्रीवृषभानुकिशोरी रसभोरी गोरी श्रीराधारानी जिस दिशामें रहती हैं, उसे भी मेरा नमस्कार हो। (रा० सु० नि० १)

रसिकचक्रवर्ती गोस्वामी श्रीहित हरिवंशजी महाराजकी एक शुभ लालसाका अवलोकन कीजिये—

पिच्छमौलि नन्दनन्दन पुरुषोत्तम श्रीराधा स्वामिनीकी दासियोंसे प्रायः प्रतिदिन ही अनुनय-विनय करते देखे जाते हैं; 'मेरे जीवनमें वह सुख-सौभाग्यका दिवस कब आयेगा, जब मैं रस-निधान मूर्तिमान् परमानुराग श्रीवृषभानुनन्दिनीके केलि-निकुञ्ज मन्दिरके आँगनमें सोहनीकी सेवा करनेवाली दासी बन जाऊँगी।' (रा० सु० नि० ७)

वे अपनी भावभरी वाणीमें कहते हैं कि श्रीराधा स्वामिनीकी मूर्ति पूर्णानुरागरस-सागरका नवनीत है। गोपांगनाओंके हृदयमें जो राशि-राशि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रेम-लहरियोंके दर्शन होते हैं, वह उन्हींकी पाद-पद्मनखचन्द्र-मणियोंकी छवि-छटाकी यत्किंचित् झलक है। चाहे कमी हो, परन्तु मुझपर वे ही अपनी कृपाका सीकर छिड़क दें। (रा० सु० नि० १०)। सचमुच गोपियोंमें मदनमोहनको मोहित करनेका जो सामर्थ्य है, उसका उद्गम-स्रोत यही है।

श्रीकिशोरीजीके नित्य नवनवाय-मान अंग-प्रत्यंग दिव्यानन्द-रसके सार हैं। उनके स्पर्शके अमृतमय अभंग तरंगोंसे वे अनङ्ग-मूर्च्छित नन्द-नन्दनको संजीवनी पिलाती रहती हैं। वह कोई अनुपम निकुञ्ज देवी सर्वोपरि सर्वातिशायी विजय प्राप्त करती रहती है। (रा० सु० नि० ५)।

प्रणयलोल-लोचना श्रीस्वामिनीके एक-एक अंग अनुराग-विधि, रसनिधिके मानो मूर्त तरंग हैं। उनके परि-रम्भणसे शृङ्गाररस-सार-सिन्धुसे प्रकट चन्द्रमाके समान श्याम-चन्द्रमा 'आः, आः' इस प्रकार आश्चर्यचर्या-चमत्कृत होते रहते हैं। साँवरे-सलोने बृजराज कुमारकी बाँकी-झाँकी प्राप्त करके श्रीराधारानीके रोम-रोम चम्पकलताके समान चमत्कृत हो उठते हैं। वंशी-ध्वनिके श्रवणसे बहिरङ्ग-अन्तरङ्ग विह्वल हो जाते हैं। राधा अर्थात् दिव्य गुणोंसे अगाधा। राधा अर्थात् अशेष बाधाओंको प्रशान्त करनेवाली सुधा। यह भक्तोंकी अभीष्ट-सिद्धिके लिए मूर्तिमती कल्पलता है। श्रीराधा सुख-तरंगिणी है। श्याम-रस-रंगिणी है। केलि-कल्लोल-मालिनी है। नाभ्यावर्त-शालिनी है। श्यामामृत महाम्भोधिसे संगमके लिए तीव्र वेगिनी है। यह भक्तजनोंके हृदयको दोषमुक्त करती है; साथ ही रस-सिक्त भी। भक्तोंके हृदयमें सत्प्रेमसिन्धु मधुधाराका चतुर्मुख परिस्रवन करते हुए उनके चरणारविन्द ही गोविन्दके जीवन-धन हैं।

श्रीराधारानीका मुखारविन्द राशि-राशि सुषमाका निधान है। काले-काले, घुंघराले, स्निग्ध, घने, चिकने, केशपाश भ्रमरके समान रसास्वाद करते हैं। उस अरविन्दका जन्म सत्प्रेमराशिके सार-सरोवरसे हुआ है। वह उस दिव्य चन्द्रमाके समान है जिसके दर्शनसे स्वानन्त-सुधारस-सिन्धुमें भी ज्वार आने लगता है। वह अनन्तानन्त शोभाका एकमात्र आश्रय है। रसिकशिरोमणि गोस्वामी श्रीहितहरिवंशजी महाराज कहते हैं कि उस सब सारोंके सारमें मेरा मन रम जाय। उसका नाम क्या है? राधा। वह किनका सार है? वह लावण्यसार है, रससार है, सुखसार है, कारुण्यसार है, मधुर छवि रूपका सार है, वैदग्धीका सार है, रति-केलि विलासका सार है। (रा० सु० नि० २५)।

श्रीराधारानीका रूप पीतारुण

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्वर्णवर्ण है। कोटि-कोटि दिव्य दामिनी कुंजके समान रश्मियाँ चिलकती रहती हैं। सूर्य-सहस्रके समान प्रकाशमान और अगणित सुधांशुके समान सुशीतल हैं। अनन्तानन्त चन्द्रसागरके मन्थनसे समुद्भूत निर्मल निष्कलंक अभिनव चन्द्रमाके तुल्य आह्लादिनी हैं। नित्य नव-नवायमान अनुरागकी तरंगके मदसे विह्वल हैं। वे नित्य-निरन्तर श्रीमदन-मोहनसे अभिन्न ही रहती हैं, फिर भी वे उन्हें दुर्लभ मानते हैं। इसी दुर्लभ भावको प्रकाशित करनेके लिए श्रीराधा-सुधा-निधिमें मदनमोहन माधवको विट भी कहा गया है। (देखिये, रा० सु० नि० ७८ ।।

क्या अनोखी झाँकी है—श्रीजी स्वयं निजलम्पट विटसे आलाप कर रही हैं। उस समय अनुराग-रक्त बिम्बाफल-सदृश अधरोष्ठसे छवि-मंजरी छिटक रही हैं। बीच-बीचमें श्वेत दन्तपंक्ति अपनी छटा बिखेर देती है। ऐसी शोभा फैलती है मानो सिन्दूरके रंगसे रंगकर मोतियोंकी पंक्ति जमा दी गयी हो। यह शोभा जिसके हृदयमें क्षणके लिए भी आगयी, वह धन्य हो गया।

परकीया भावमें अत्यन्त तीव्र एवं गाढ़ अनुराग होता है। उससे भी अतिशय अनुरागकी गाढ़ता और तीव्रता श्रीराधारानीमें है। यही द्योतित करनेके लिए उनके अभिसार और गोपनीयताका वर्णन किया जाता है। वस्तुतः वे माधवकी अनादि नित्य संगिनी स्वात्मरूपा ही हैं। देखिये, सखिका वचन—'हे श्रीराधिके! मेरे मनमें यह आशा, लालसा प्रबल हो रही है कि मैं संकेत-कुञ्जमें पल्लवकी सेज बिछाऊँ। भिन्न-भिन्न उपायोंसे तुम्हारी विहार-लीलाओंके गोपनका प्रयत्न करूँ और श्यामचन्द्रके प्रति तुम्हारा अभिसार कराऊँ। इसके लिए तुम मुझपर कृपा-कटाक्ष करो। (रा० सु० नि० ३१)। यह स्पष्ट है कि स्वकीया नायिकामें मुख्य अभिसार और गोपन नहीं हो सकता। यही कारण है, इस नूतन रसास्वादनके लिए लालसा करनेका।

श्रीवृषभानुकिशोरी व्रज नवयुव-राज-चित्तचोरी श्रीराधारानीका एक-एक अंग छलकते हुए उज्ज्वल रसामृत-सिन्धुका सर्वस्व है। वह गाढ़ अनुराग रसके सार-सरोवरमें प्रकट

एक दिन किसी भक्तने श्रीआनन्दमयी माँसे प्रश्न किया—माँ! पहले तो आपके शरीरमें और जीवन-चर्यामें बहुत-सी सिद्धियाँ प्रकट होती थीं, अब क्यों नहीं होती?' माँने तुरन्त उत्तर दिया—'तुम क्या उन्हींको अच्छा समझते हो?' माँका अभिप्राय था कि सिद्ध जीवनकी अपेक्षा सहज जीवन उत्तम है। आने-जानेवाली सिद्धियोंमें क्या रखा है?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सरोजके समान है मानो, स्वानन्द-सुधा-मकरन्दका घन हो। उनका मुख-चन्द्र अनन्त चन्द्रसागरके मन्थनसे समुद्भूत निर्मल, निष्कलंक, सदापूर्ण चन्द्रमाके समान है। उनके चरणारविन्द उस कमलके समान हैं जो अनन्तानन्द सौन्दर्यसार-सुधा-सरोवरमें प्रफुल्लित हो। उनकी अंग-प्रत्यंगकी छटा मानो, लावण्य-सुधा-निधिका सार-सर्वस्व हो। गोस्वामी श्रीहित-हरिवंशने श्रीराधारानीको सम्बोधित करके उनके वक्षःस्थलकी वन्दना करते हैं। वे कहते हैं—'यह क्रीडा-सरोवरमें उत्फुल्ल स्वर्णकमलकी अनखिली कली हैं। स्वानन्दपूर्ण रस-कल्पतरुके फल हैं। यह भुवनमोहनके भी मोहन हैं। स्वामिनी ! मैं तुम्हारे इस अभिनव स्तन-मण्डलको नमस्कार करता हूँ।' (रा० सु० नि० ३)।

श्रीराधारानी क्या हैं—प्रेमानन्द रसकी अद्वितीय सिन्धु। उसमें महा-केलिकी लहरियाँ लहराती रहती हैं। उनकी मूर्ति गाढ़ आनन्दघन अनुराग ही है। कोटि-कोटि विद्युल्लताके समान ज्योतिर्मयी रश्मियाँ प्रकट होती रहती हैं। उनके लीलापूर्ण अपांग तरंगोंसे असंख्य कन्दर्पोंका प्रादुर्भाव होता है।

भगवान्‌की मूर्ति है—प्रेमानन्द सुधा-सार-सर्वस्व। उनके हृदयमें स्थित पूर्णानुराग-रस-सार सुधाजल-निधिसे निर्मल, निष्कलंक चन्द्रस्वरूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी प्रकट होती हैं। उनका हृदय ही वृन्दावन है। वहाँ रसोद्रेकसे जो जड़िमा है, वही वृन्दावनकी जड़िमा है। देखिए—

गौराङ्गे म्रदिमा स्मिते मधुरिमा नेत्राञ्चले द्राघिमा,
वक्षोजे गरिमा तथैव तनिमा मध्ये गतौ मन्दिमा।
श्रोण्याञ्च प्रथिमा भ्रुवोःकुटिलिमा बिम्बाधरे शोणिमा,
श्रीराधे हृदि ते रसेन जडिमा ध्यानेऽस्तु मे गोचरः॥

गौराङ्गमें म्रदिमा = मृदुलता, मुसकानमें मधुरिमा, नेत्रांचलमें द्राघिमा = विशालता, वक्षःस्थलमें गरिमा, कटिभागमें तनिमा = सूक्ष्मता, चालमें मन्दिमा, नितम्बमें प्रथिमा = बड़प्पन, भौंहोंमें कुटिलिमा, बिम्बाधरमें रक्तिमा, हृदयमें रसवश जडिमा। हे श्रीराधे ! मेरे ध्यानमें तुम्हारी ये सब विशेषताएँ दृष्टिगोचर हों।

वह दिव्य ज्योति मधुर-उज्ज्वल-रसरूप प्रेमका हृदय है। शृंगार-केलि-कलाका प्राण है। कैशोराद्भुत माधुरी-धुरीण है। प्रेमोल्लास ही उसका स्वरूप है। उसके रश्मि-कणका भी जो ध्यान करते हैं, वे ही धन्य हैं। उन्हें बाह्य वेष धारण करनेकी कोई अपेक्षा नहीं होती। वे राधारस निमग्न हृदय होनेके कारण कृतार्थ ही हैं। उनकी स्थितिका क्या ही सुन्दर निरूपण है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिखन्ति भुजमूलतो न
खलु शंखचक्रादिकम्,
विचित्रहरिमन्दिरं न
रचयन्ति भालस्थले ।
लसत्तुलसिमालिकां
दधति कण्ठपीठे न वा,
गुरोर्भजनविक्रमात्
क इह ते महाबुद्धयः ॥

जो अपने भुजमूलमें शंख-चक्रादिका चिन्ह नहीं बनाते, भालस्थलीमें विचित्र हरि-मन्दिरकी रचना नहीं करते और अपने कण्ठदेशमें सुन्दर तुलसीकी माला धारण नहीं करते; श्रीराधारानीके भजनमात्रसे प्रभावशाली ऐसे वे महाबुद्धि महापुरुष कौन हैं ?

श्रीराधारानीकी सहचरियाँ प्राण-प्रेष्ठ, परमप्रियतम, रति-लम्पट श्रीकृष्णके प्राप्त होनेपर भी श्रीराधा-पदरसका ही रसास्वादन करती हैं ।

जब श्रीस्वामिनी मान करती हैं और श्रीकृष्णकी ओरसे मुँह फेर लेती हैं तब उनकी प्रिय सखी परिहासके द्वारा इस प्रकार मनाती हैं—'सखि ! तुम्हें सदासे ही कृष्णपक्ष, कृष्णकमल, कृष्णसारमृग, कृष्णतमाल, कृष्णमेघ—यही सब प्यारे लगते आये हैं, कृष्ण यमुना भी, क्योंकि इनके नाम-रूप कृष्णसे मिलते हैं, फिर आज तुम श्रीकृष्णकी ओरसे विमुख क्यों हो रही हो ? उनकी कृष्णता तो मोहन-माधुरीकी पराकाष्ठा है ।' यह सुनकर श्रीजीके मुखपर हास्यकी रेखाएँ खिंच जाती हैं । 'श्रीराधे ! वह दिन कब होगा, जब मैं तुम्हें इस प्रकार हँसते देखूँगी ।' (रा० सु० नि० ८८) ।

श्रीकिशोरीजीका श्रीविग्रह प्रणय-रस महाम्भोधिकी उद्वेलावस्थाका सार-सर्वस्व है । उनके लोचन हैं—रसाम्बुधिमें मीन, स्तन हैं—सुधा-सरोवरके चक्रवाक, मुख है—सुरतरंगिणीमें विकसित हेमाम्बुज; इन सबको देख-देखकर श्रीकृष्ण परमानन्दनिमग्न होते रहते हैं । उनके पादारविन्दसे आनन्दघन अनुरागलहरी प्रवाहित होती रहती है । 'श्रीराधा' यह मंगलमय नाम ही श्रीकृष्णको वशमें करनेका मन्त्र है । निखिल जीवोंके परमप्रेमास्पद श्रीहरि प्रेमाश्रुपूर्ण नेत्रोंसे इसी नामका जप करते रहते हैं । वे धन्य हैं जो इस नामामृतका पान करते रहते हैं । श्रीकिशोरीजीके चरणाम्बुजका पराग-रस केवल उनके कृपापात्रको ही प्राप्त हो सकता है । उनमें आठ दिव्य गुणोंकी सीमा एक साथ निवास करती है, यथा—

प्रेमोल्लासैकसीमा परमरस-
चमत्कार - वैचित्र्यसीमा,
सौन्दर्यस्यैकसीमा किमपि
नववयोरूपलावण्यसीमा ।
लीलामाधुर्यसीमा निजजन-
परमोदारवात्सल्यसीमा,
सा राधा सौख्यसीमा जयति
रतिकलाकेलिमाधुर्यसीमा ॥
(रा० सु० नि० १३०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीराधारानीकी कृपा प्राप्त होने पर मुक्ति भी तुच्छ हो जाती हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण उनके कटाक्ष शरपातसे मूर्च्छित हो जाते हैं। शिखण्ड स्खलित हो जाता हैं, पीताम्बर गिर जाता है। जो श्रीराधारानीका रहस्य जानते हैं, वे केवल उनके कैंकर्यकी ही कामना करते हैं। श्रीश्यामसुन्दरके लोचन-चकोर उन्हींके स्वरूप-रसका पान करते हैं। अपनी अद्भुत रसामृतचन्द्रिकासे वे भक्तोंको संतृप्त करती रहती हैं। उनके पादारविन्द-मकरन्द रसामृतका पान ही सम्पूर्ण कल्याणका मूल है।

कभी-कभी प्रेम-वैचित्य दशाका उदय होता है, तब वे अंकमें ही स्थित प्रियतमको ही दूर समझकर विप्रलम्भका अनुभव करने लगती हैं और 'हा, मोहन ! हा, मोहन !' ऐसा प्रलाप करने लगती हैं। संयोगमें वियोग और बियोगमें संयोग—यह भी प्रेमरसकी एक उत्कृष्ट अवस्था है। ऐसी प्रेममयी श्रीराधारानीके नामामृतका पान करनेवालोंके सारे ही अपराध भगवान् क्षमा कर देते हैं और प्रेमाविष्ट होकर सोचने लगते हैं कि इस भक्तको क्या दान करें जिसके एक नामकी ऐसी महिमा ! उसकी अपनी महिमा कितनी होगी ! यह कौन जान सकता है ? (रा० सु० नि० १५४)।

दोनों नित्य-निरन्तर एक-दूसरेसे सटे रहते हैं, जल-तरंगके समान और परमानन्द तथा उसकी माधुरीकेसमान। उनमें कभी, किञ्चित् वियोगकको कल्पना ही नहीं है। फिर भी कभी पलकोंके गिरनेसे, कभी मनके अनवधानसे, कभी भ्रमसे वियोगाभासकी प्रतीति हो जाती है। उस समय बाह्य-आभ्यन्तर मानो कोटि-कोटि प्रलयाग्निसे जल रहा हो—ऐसा प्रतीत होता है। स्नेहानुवन्धकी ऐसी ग्रन्थि पड़ गयी है कि गौर-ज्योति श्यामतेजसे सम्वलित रहती है और श्याम ज्योति गौर-तेजसे संपुटित। (रा० सु० नि० १७३)।

वस्तुतः केवल माधव ही राधाके माधुर्यको पहचानते हैं, माधवके माधुर्यको श्रीराधा। श्रीवृन्दावनधामकी महिमासे सहचरियाँ युगलके माधुर्यको पहचानती हैं। श्रीश्मामसुन्दर हैं—परमानन्द-सुधा-सार-सर्वस्व स्वरूप-सिन्धु और श्रीराधा हैं—अनंग नवरंगिणी, रसतरंगिणी, उनसे निरन्तर संगत।

'वन' शब्दका अर्थ है—यौवन। श्रीवृन्दाका यौवन ही वृन्दावन है। वह सकल सद्गुण-वृन्दका 'अवन' अर्थात् रक्षक भी है। श्रीश्यामा भी वृन्दाटवीके समान ही मधुपतिकी मनोमोहनी हैं। उनकी रोमराजि यमुना-सी है। अधर-छवि वंधूक पुष्प। सर्वांगचम्पक पुष्प। नाभि सरोवर। वक्षोज पुष्पस्तवक। भूज-युग्म लता। भूषणध्वनि भृङ्गगुञ्जन।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मूर्तिमती हरिप्रीति ही राधा है। वह रस-सिन्धुकी सार-सम्पदा है। वैदग्धीका हृदय। यह स्वयं श्री हैं, जो प्रेमघनाकृति श्रीकृष्णके प्रेमोल्लाससे कभी सीत्कार करती हैं, कभी थर-थर काँप उठती हैं, कभी 'श्याम-श्याम' कहकर रोमाञ्चित हो जाती हैं। सदा आनन्द, सदा निर्मर्याद रसका विकिरण। जो उनकी चरण-नख-

भाव-योग-परिष्कृत हृदयकमलपर विराजते हैं। पहले-पहल भक्तोंके हृदयसे प्रकट रसोद्रिक्त रस परिणाम-रूप शब्द-ब्रह्मके रूपमें अभिव्यक्त वाणीके द्वारा उनका श्रवण होता है। तदनन्तर दर्शनोत्कण्ठित नेत्रोंसे उनके शुभागमनकी प्रतीक्षा होती है। भगवान् नेत्रोंसे देखे जाते हैं, केवल इतना ही नहीं, अपितु भावुक भक्त अपनी

सिद्धियोंमें मत फँसो

एक बार अवधूत दत्तात्रेय से गोरक्षनाथने कहा—'मुझे काय-सिद्धि मिल गयी है, आप परीक्षा कर लीजिये।' दत्तात्रेयजीके हाथमें तलवार दे दी। उन्होंने तलवार मारी और वह टूटकर गिर पड़ी। दत्तात्रेयजीने कहा—'यह काय-सिद्धि नहीं है, पृथिवी-सिद्धि है। अब तुम तलवार लेकर मेरे शरीरपर मारो।'

गोरक्षनाथने वैसा ही किया। तलवार आर-पार होती जाय परन्तु न शरीर कटे, न तलवार टूटे। दत्तात्रेय जीने कहा—'इसका नाम आकाश-सिद्धि है।'

इसका अर्थ यह है कि सिद्धियाँ अनेक होती हैं—एक-से-एक बढ़-चढ़कर। इनका अभिमान नहीं करना चाहिए। परमात्माके साक्षात्कारके मार्गमें इनका कोई महत्त्व नहीं है।

ज्योत्स्नासे अपने अन्तरंगको धो लेते हैं, उनके हृदयमें सरस भक्तिका उदय होता है। गोपेन्द्रनन्दन-मनकी चोरी, भोरी-भोरी, गोरी-गोरी किशोरी अपना वह दास्य प्रदान करे जो उपनिषदोंका परम रहस्य है। (रा० सु० नि० २·४)

श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें कहा गया है कि भगवान् भक्तोंके भाव-भीनी रसीली चित्तवृत्तिसे भगवान्‌के जिस-जिस रूपकी भावना करते हैं, सन्तोंपर अनुग्रह करनेके लिए भगवान् वैसा-ही-वैसा रूप प्रकट करते हैं।

अधिक कहाँ तक कहें, भक्त-जनोंके हृदयमें भावित होकर रसामृत-बिन्दु ही सिन्धु हो जाता है। वह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निर्मर्यादरूपसे बढ़ता है और भक्तोंके आत्मा, मन, प्राण, इन्द्रिय एवं देहोंको परिपूर्ण करके आप्लावित कर देता है। वहाँसे छलककर वह मुखमें आता है और वाणीसे संसृष्ट होकर दिव्य शब्द-ब्रह्मके रूपमें अभिव्यक्त होता है। वही निरावरण कर्ण-कुहरोंसे हृदय-गुहामें प्रविष्ट होकर निखिल रसामृत-सिन्धु श्रीराधा-माधवके रूपमें प्रकाशमान होता है। अभिप्राय यह कि भगवद्-रसमय शब्द ही हृदयमें रसमय भगवान्‌को प्रकट करते हैं। वेदान्तकी रीतिसे भी महावाक्योंके द्वारा ही हृदयमें निरावरण ब्रह्म व्यंजित होता है।

यही कारण है कि पहले शब्दमय नयनोंसे ही प्रभु-स्वरूपका दर्शन होता है। रसिकोंने तो यहाँतक कह दिया कि कानोंके द्वारा सौन्दर्य देखा जाता है और नेत्रोंके द्वारा सुना जाता है। जब प्रियतम प्रभुकी चर्चा कानोंमें प्रविष्ट होती है, तब वही प्राण बन जाती है। जब मैंने कर्ण-प्रविष्ट कृष्ण-चर्चाका दर्शन किया, तब कान ही लोचन बन गये। तभीसे कान रूप देखते हैं और वाणी सुनती है। उसकी चर्चाके प्रसंगमें रूपका अवगम होनेपर नेत्र और श्रोत्रका सम्बन्ध हो गया। श्रोत्रने मनको रूप समर्पण किया। मन रूपयुक्त होकर नेत्रोंमें प्रविष्ट हुआ। रूपमें प्रविष्ट नयन रूपमय हो गया। नयन आनन्दमग्न होकर रूप-वार्तामें लीन हो गया। मनने पूछा—'जिसकी तुम चर्चा करते हो, वह कहाँ है?' नयनोंने कहा—'हम नहीं जानते, बिना पहचानके क्या बोलें? प्रेमके पास जाते हैं और उससे पता लगाते हैं।' जब मन और नयन प्रेमके पास गये, तब प्रेमने मनको रूपके पास भेज दिया। नेत्र निराश होकर रोने लगे—हाय! मेरा वह मित्र कहाँ गया, जिसने रूपचर्चा की थी। वह कहीं नहीं मिलता।' अब नेत्र दिन-रात रोते हैं, नींद नहीं आती, बेचैन रहते हैं। प्रेम-मेघकी गर्जनासे विद्युत् होकर भक्तवाणी जनकल्याणके लिए प्रवृत्त होती है। भक्तवाणी प्रियतम भगवान्‌की लम्बी पत्रिका है। उसे पढ़नेसे प्रियतमके समीप जानेकी शक्ति मिलती है। दूसरे लोग भगवान्‌का भजन करते हैं। सखियाँ दिव्य युग्मकी प्रीतिका ही भजन करती हैं। भजनीय प्रेमकी पहचानके लिए प्रेम-रीति जानना आवश्यक है। प्रीति-रीतिके श्रवणसे हृदय सरस हो जाता है। अभिप्राय यह है कि आनन्दमन्थर, कौतुकी, सुखनिधि स्नेह भक्तोंकी वाणीसे ही प्राप्त होता है।

भगवद्वाक्यरूप वेद और वेदाश्रित सभी आर्ष सद्ग्रन्थ रसिकोंको भगवान्‌के पास ले जानेके लिए आये हुए हैं तथा शिविका रूप हैं।

श्यामल तमाल तरुका आलिंगन करनेवाली रूपवल्लीके समान

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

श्रीमाधवका आलिंगन करके किशोरीजी रसाविष्ट हो जाती हैं। उनकी ऐसी दशा देखकर रति एवं रतिपति विस्मित-चकित हो जाते हैं। उनकी निरन्तर नवनवायमान प्रीति भी क्षण-क्षण बढ़ती रहती है। आसक्ति भी अपने आपको भूलकर रसमग्न हो जाती है। प्यारे श्यामसुन्दर प्रेयसीकी अतिशय सुकुमारता देखकर अपने मनके कर-कमलोंसे भी स्पर्श करनेमें डरते हैं। 'मनहूके करन सों छूअत डरत है।' प्रेयसीके चरण-चिन्हपर धूप पड़ते देखकर अपने शरीर और प्राणोंको छाता बना देते हैं। इनके स्वल्प सान्निध्यसे भी विपिन-राजके लता, वृक्ष, पौधे कुन्दनकी भाँति जगमगाने लगते हैं। प्रेयसीकी सहज तिरछी चितवन एवं मन्द-मन्द मुसकान देखकर प्रियतमकी कुछ अद्भुत गति हो जाती है। श्रीराधाके सौन्दर्य-माधुर्यमय अंग-उपांगोंको देखकर प्यारेका मन छविमहार्णवमें डूबने लगता है। उनके विशाल, उज्ज्वल, कजरारे, रतनारे नयन-युगलको देखकर प्रियतमका अन्तस्तल शीतल हो जाता है। उन नयनोंको देखकर खञ्जनकी चपलता, कंजकी अरुणिमा और मुक्ताकी झिलमिल ज्योति भी लज्जित हो जाती है। प्यारीजीके सरस, सलज्ज, प्रेमपूर्ण, चंचल एवं अंचलसे ढके नयन जहाँ-जहाँ देखते हैं, वहीं-वहीं सौन्दर्यकी वर्षा होने लगती है। इनके अंग-प्रत्यंगमें, रोम-रोममें रूप-कान्ति और लावण्यकी पराकाष्ठा चमकती रहती है। उनकी महामोहन रूपछविकी छलकती छटा देखकर साक्षात् मन्मथ-मन्मथ भुवन-मोहनकी मोहनी शक्ति भी मोहित हो जाती है। उनकी मोदमयी माधुरी मदनको भी उन्मद कर देती है। दन्तपंक्तिकी शोभा दामिनी-द्युतिको भी लज्जित कर देती है। नखमणि-चन्द्रिका सम्पूर्ण सौन्दर्योंको पराजित कर देती है। गौरांगी श्रीकिशोरीजीके छवि सुधाकणसे संतृप्त होकर अन्य छवि छवि बनती है।

कभी-कभी प्रियतमकी विलक्षण प्रेमगति देखकर प्रेयसी वृषभानुनन्दिनी अपना देह एवं पाद-विन्यास भूल जाती हैं और वामताका परित्याग करके दाक्षिण्य-भावको स्वीकार कर लेती हैं। आँखोंमें आँसू, मुखमें 'प्रियतम', 'प्राणनाथ'। प्रियतमके हृदयसे लग जाती हैं। उनके मुख-चन्द्रपर मुग्ध होकर चुम्बन, पान, दंशन करके विवश हो जाती हैं। उनकी वह विवशता और प्रेम-प्रवाह सभी सखियोंको रससे आप्लावित एवं आप्यायित कर देता है। कोई चित्र-लिखी-सी हर जाती हैं, कोई बेसुध हो जाती हैं। किसी-किसीके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुधारा बहने लगती है। श्रीराधा-माधव सखियोंकी यह दशा देखकर करुणार्द्र हो जाते हैं और उनके हृदयमें विल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

क्षण प्रेमधाराका संचार करके अगाध प्रेम-सिन्धुसे ऊपर उठा लेते हैं। रस-रंग-अनंगपूर्ण प्यासी-प्यासी सखियाँ चकोरीके समान चारों ओरसे युगल-चन्द्रको घेर लेती हैं। इस प्रकार प्रतिक्षण नित्य-नवीन प्रेमतरंग उठते रहते हैं।

सखियाँ मानो हंसी हैं। वे युग्म-तत्त्वकी काम-कलारूप मुक्ता चुगती रहती हैं। और तो क्या, वे राधा-माधवकी मूर्तिमती इच्छा-शक्तियाँ ही हैं। अतः युगल-तत्त्व सखियोंकी इच्छाके पराधीन ही है। सभी लीलाओंकी रचना वे ही करती हैं और भिन्न-भिन्न लीलाओंके अनुरूप भावोंकी सृष्टि करती हैं। श्रीधाम वृन्दावनमें शिशिर और ग्रीष्मकी सन्धि वसन्त-ऋतु सर्वदा प्रकट होती रहती है। विपिनराजके जल, स्थल, नभ—सब वासन्तिक उल्लासोंसे उल्लसित रहते हैं। स्वयं काम निज कर-कमलोंसे कुंजमन्दिरोंका मार्जन करता है। श्रीराधा-माधव अनुराग-रंजित रजनीमें परमानन्द-विलासका अनुभव करते हैं। उनके नेत्रोंमें नींदकी खुमारी रहती है। जब उनके नेत्र खुलते हैं तब नित्य सहचरियाँ दिव्यानुराग-रंजित अनादि दम्पतीको चारों ओरसे घेर लेती हैं और संगीत, वाद्य, नृत्यके द्वारा उनकी आराधना करती हैं। वंशीकी मधुर-मधुर ध्वनि गौरी-रागके आलापके लिए प्रेरित करती हैं। सखियाँ वसन्त-संगीत गा-गाकर युगलको वसन्त-क्रीडाके लिए प्रवृत्त करती हैं। सखियाँ श्यामाश्यामके हितमें निरन्तर निरत हैं। हित ही उन्हें अवहित (सावधान) करता रहता है। सेवाकी कड़ी कभी टूटती नहीं, अन्यथा जिनमें यौवन-मद, स्नेह-मद, रस-मद, उन्मद नृत्य कर रहे हैं, जिनके मन-बुद्धिका अस्तित्व भी लुप्त हो चुका है, उन्हें सेवाका ध्यान कहाँ-से आता ? जब दिव्य-दम्पती प्रेमविह्वल और स्मृतिहीन हो जाते हैं, तब भी वे अपने परम प्रेमास्पदके प्रति सावधान रहती हैं और श्रृंगार-रसकी धारा प्रवाहित करती रहती हैं। प्रेयसीके अधर प्रियतमके अधरके साथ जोड़ देती हैं। प्रियतमके कर-कमल प्रेयसीके वक्षःस्थलपर स्थापित कर देती हैं। श्रीमाधवालिंगित वृषभानु-किशोरीकी वैसी ही शोभा होती है जैसी श्यामल तरुण तमालसे आलिंगित स्वर्ण-लताकी। उनके स्वर्णसदृश अंग और यौवन श्याम-संस्पर्शसे सफल हो जाते हैं।

सखियाँ मानो राधा-माधवकी छाया हों। जैसे दो नेत्रोंमें एक ही दृष्टि हो। दिन और रातकी सन्धिमें सन्ध्याके समान भोक्ता एवं भोग्य, प्रेयसी-प्रियतमकी सन्धिमें गोपियोंकी स्थिति है। वे प्रेरक प्रेमकी प्रतिकृति हैं। राधा-माधव परस्पर रतिरूप हैं। अतः वे भी स्वभावसे ही रतिमती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हैं। युग्म-तत्त्वका प्रेम-वन्धन ही उनका प्रेमालम्वन है। किसी रसिकने कहा है–

अहो चित्रमहो चित्रं
वन्दे तत्प्रेमवन्धनम्।
यद्बद्धं मुक्तिदं मुक्तं
ब्रह्म क्रीडामृगीकृतम्॥

अहो, आश्चर्य है! आश्चर्य है! मैं तो प्रेमवन्धनकी ही वन्दना करता हूँ। जिससे बँधकर मुक्तिदाता नित्य-मुक्त ब्रह्म क्रीडा-मृग (खिलौना) वना दिया गया।

राधा-माधवके उपभोग्य प्रेममें अप्राकृत कामरूप नियम भी होते हैं परन्तु सखियोंकी प्रीति केवल प्रेम-संसर्गिणी होती है। उसमें लेशमात्र भी नियमका संस्पर्श नहीं है। अतः काम-स्पर्शशून्य शुद्ध प्रेममयी सखियाँ श्रीराधा-माधवकी प्रीतिकी अपेक्षा भी विशिष्ट हैं। (म० श्री०)

सेवा लेना भी धर्म है

गंगा तटपर एक महात्मा रहते थे। विरक्त, विचारवान्, अनुभवी। वे किसीसे कोई सेवा नहीं लेते थे। बड़े-बड़े प्रेमी सेवक आते, वे किसीके हाथका पानी भी न पीते! माँगकर खाते, गंगाजल पीते, पेड़के नीचे सो जाते। बुढ़ापेमें उन्हें पक्षाघात रोग हो गया। परमपूज्यपाद श्रीउड़ियाबाबा जी महाराज उनसे मिलनेके लिए गये।

ठाकुर नाहर सिंहने एकान्तमें महाराज जीसे प्रश्न किया—'इतने बड़े विरक्त महात्माको यह रोग क्यों हुआ?'

श्रीमहाराज जीने उत्तर दिया—'ये वैराग्यके आवेशमें अत्यन्त श्रद्धालु, धर्मात्मा एवं प्रेमी सेवकोंका तिरस्कार करते रहे हैं। उनका मन टूट गया। उन्हें दुःख हुआ। उनकी सेवाकी उत्कट इच्छा ही पूर्ण हो रही है कि उन्हें सबकी सेवा लेनी पड़ रही है। सेवा करना चाहनें-वालेको दुःख न हो, इस दृष्टिसे सेवा-स्वीकार भी एक सेवा है और वह भी धर्म है। विरक्तिके आवेश में भी किसीका तिरस्कार नहीं करना चाहिए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

एकाग्रताकी करामात

पाठशाला लगी थी। सभी विद्यार्थी अपने-अपने स्थानपर वैठे थे। अध्यापकने आते ही लड़कोंको एक प्रश्न हल करनेके लिए दिया। सभी लड़के कापी खोलकर उसपर झुक गये। कलम जोड़-भाग करने लगी। पर एक विद्यार्थी ठुड्डीपर हाथ दिये बैठा रहा। अध्यापकने पास जाकर उससे पूछा—'प्रश्न क्यों नहीं हल कर रहे हो ?' विद्यार्थीने उत्तर दिया—'महाशय ! प्रश्न मैंने मौखिक ही हल कर लिया है।' अध्यापकने कहा—'कापीपर उत्तर लिखो।' लड़केके सही उत्तर लिख देनेपर उन्हें संदेह हुआ—कहीं इस प्रश्नका उत्तर इसे याद तो नहीं था ? उन्होंने एक दूसरा कठिन प्रश्न हल करनेको दिया। लड़केने पुनः कापीको हाथ नहीं लगाया। एक मिनटतक सोचता रहा फिर कापीपर उसका उत्तर लिख दिया। अध्यापकके आश्चर्यका ठिकाना नहीं रहा।

वह वालक आगे चलकर सारे भारतवर्षमें 'लोकमान्य वालगंगाधर तिलक'के नामसे प्रसिद्ध हुआ।

मौखिक प्रश्न करनेका रहस्य कोई जादू-टोना नहीं है। अत्यधिक एकाग्रतासे कोई काम करनेपर ऐसा ही होता है। कई लोग कई बौद्धिक कार्य एक साथ ही करनेकी क्षमता रखते हैं। दूसरा कोई भी चाहे तो अत्यधिक परिश्रम और सही तरीकेसे अपने मस्तिष्कका विकास-कर वैसा कर सकता है।

●●●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धर्मके उपादान

धर्मका मूल सच्चिदानन्द अद्वय आत्मा ही है; क्योंकि औपनिषद-दृष्टिसे उसके सिवा दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। इसीसे धर्म साधन तो है ही, सिद्धके जीवनमें भी अनुगत रहता है। उदाहरणके लिए पृथक्-पृथक् विचार कीजिये—

(१) आत्मा सत् है—इसका अर्थ है, वह है, रहता है और रहेगा। न मरा, न मर रहा है, न मरेगा। इस सिद्धान्तका फल यह निकलता है कि न हम मरें, न मारें, अर्थात् न अपनी मृत्युसे डरें और न दूसरेको डरायें। अपने लिए निर्भयता और दूसरेके लिए अभयदान—यह आत्मसत्ताके ज्ञानका प्रथम फल है।

आत्मसत्ताके ज्ञानका दूसरा फल यह है कि हम जीते आये हैं, जी रहे हैं और जियेंगे। अबतक यदि मृत्युने हमारा स्पर्श किया होता तो हम आज न होते। जीना सहज स्वभाव है और मरना आगन्तुक एवं कल्पित। इससे यह धर्म निकलता है कि हम जियें और जिलायें। इसका सार यह है कि सबको, जिसमें अपना आपा भी सम्मिलित है, अन्न, वस्त्र, आवास, औषध प्राप्त होना चाहिए। इन्हें उपार्जन करनेके लिए श्रम करना, असमर्थोंको प्राप्त कराना और अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य—जैसे चिन्तन, विद्या, समाधि एवं संरक्षणमें लगे लोगोंके भरण-पोषणकी व्यवस्था करना इसमें सम्मिलित है।

(२) आत्मा चित् अर्थात् ज्ञानस्वरूप है—इसका अर्थ यह है कि वह अज्ञानस्वरूप नहीं होता। सारी इन्द्रियों और वृत्तियोंका उपसंहार हो जानेपर भी, वह समाधि, मूर्च्छा, सुषुप्तिमें—उन-उन अवस्थाओंको प्रकाशित करता रहता है। यदि आत्मा ज्ञानस्वरूप न हो तो 'सुषुप्ति' नामकी कोई अवस्था होती है—यह किसीको ज्ञात न हो। 'मैं अज्ञ हूँ'—यह भी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञात ही होता है। ऐसी वस्तु-स्थितिमें आत्माका अज्ञानके साथ कोई मेल नहीं है। इसमें-से यह धर्म निकलता है कि न हम अज्ञानी रहें और न किसीको अज्ञानी बनायें। नासमझ रहना, वेवकूफ वनना और ठगा जाना अधर्म है, साथ ही किसीकी नासमझीसे लाभ उठाना, किसीको बेवकूफ वनाना और ठगना भी अधर्म है। अपने ज्ञानस्वरूप होनेका पहला फल यही है।

अपने ज्ञानस्वरूप होनेका दूसरा फल यह है कि हम अन्तःकरण—व्यक्तिसे तादात्म्य करनेपर भी जानते

●● महाराजश्री

हैं, जानते रहते हैं, और-और जानना चाहते हैं। इसका अर्थ है कि हमें ज्ञान-वृद्धिके लिए प्रयास करना चाहिए और दूसरोंके ज्ञानका संवर्द्धन भी करना चाहिए। अपने ज्ञानकी स्फुटता और सबके लिए ज्ञानका दान जीवके लिए सहज स्वभावप्राप्त धर्म है। पशु-पक्षी भी ज्ञान प्राप्त करते हैं और अपने बच्चोंको शिक्षा देते हैं। ऐसी स्थितिमें शिक्षण, प्रशिक्षण, विद्या-दानकी व्यवस्था, पुस्तकालय, वाच-नालय, सत्सङ्गसत्र आदिका आयोजन भी धर्म है अपने लिए और सबके लिए। विशेष-विशेष ज्ञान, अर्थात् विज्ञानकी उपलब्धियोंके लिए अनु-सन्धानशाला, प्रयोगशाला भी होनी चाहिए। अतीत ज्ञान अर्थात् ऐति-हासिक ज्ञानसे शिक्षा प्राप्त करना, वर्तमान परिस्थितिका ज्ञान रखना और भविष्यकी योजना वनाना भी धर्मका अङ्ग है। प्राणिविज्ञान, समाज-विज्ञान, राजनीति, अर्थशास्त्र—सबका इसीमें समावेश है। निर्विशेष, निरा-कार, शुद्ध तत्त्वका ज्ञान प्राप्त करना भी आवश्यक है। उससे बुद्धिका एकाङ्गी झुकाव दूर होता है। विशेष ज्ञान, सामान्य ज्ञान और समन्वय-ज्ञानके विना मनुष्यका जीवन सन्तुलित नहीं हो सकता। भिन्न-भिन्न विषयोंका ज्ञान तो कहीं भी प्राप्त हो सकता है, परन्तु जो निर्विषय ज्ञानका तात्त्विक रूप है, वह केवल वीतराग तत्त्वज्ञानी महात्माओंसे ही प्राप्त हो सकता है। उसके लिए व्यवस्था करना भी धर्म है। शरीरकी भीतरी वस्तुओंको जानना 'अध्यात्म-ज्ञान' है। ब्रह्माण्डकी सञ्चालन-प्रक्रियाको समझना 'अधिदैव ज्ञान' है। भूतभौतिक वस्तुओंको समझना 'आधिभौतिक ज्ञान' है। सबसे विलक्षण अद्वितीय आत्माको जानना 'परमार्थ-ज्ञान' है। आत्माके ज्ञानस्वरूप होनेके कारण सब कुछ जानना और उसके लिए सुविधा प्राप्त करना-कराना सहज धर्म है।

(३) आत्मा आनन्दस्वरूप है—यह बात अपने प्रति मुख्य प्रियता

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अनवरत सिद्ध करती है। सब कुछ शेष है, आत्मा शेषी। हम दुःख पसन्द नहीं करते, नहीं चाहते। दूसरे भी दुःख पसन्द नहीं करते, नहीं चाहते। जैसे शरीरके भीतर एक काँटा गड़ जाय या आँखमें कोई वालू-कण पड़ जाय तो उस विजातीय द्रव्यको शरीर और आँख सहन नहीं करते हैं, उसी प्रकार आत्माके लिए दुःख एक विजातीय द्रव्य है और शक्तिभर उसके निवारणके लिए प्रयत्न भी किया जाता है। अपने आनन्दस्वरूप होनेसे यह धर्म निकलता है कि हम कभी, कहीं, किसी कारणसे दुखी न हों और दूसरेमें दुखीपनेका अभिमान जाग्रत् न करें। हम दुखी हैं या तुम दुखी हो—ये दोनों ही बातें आत्मामें विजातीय द्रव्यका आरोप करके कही जाती हैं। अतः दुखी होना और दुखी बनाना—दोनों ही अधर्म है और हमारे आत्माके स्वभावके प्रतिकूल है। आनन्दस्वरूप आत्माका यह प्रथम धर्म है।

आनन्दस्वरूप-आत्माका दूसरा धर्म यह निकलता है कि वह सर्वदा, सर्वत्र, सर्वथा—हर हालमें सुखी रहे और दूसरोंको सुखी रक्खे। हम सुखी रहना चाहते हैं, सब सुखी रहना चाहते हैं। जैसे सुख मिले, वैसे सुखी हों—ज्ञानसे, ध्यानसे, विश्रामसे, भगवत्प्रेमसे, धर्माचरणसे, नृत्यसे, नाट्यसे, गानसे, वाद्यसे, अभिनयसे, त्यागसे, संग्रहसे—कैसे भी मनुष्यको सुख प्राप्त होना चाहिए। सुख पाना धर्म है, सुख देना धर्म है। वह जितना नित्य होगा, जितना अनायास होगा, जितना ही दूसरोंको दुःख पहुँचाये विना होगा, जितना व्यापक होगा और जितना अन्यनिरपेक्ष होगा, उतना ही श्रेष्ठ होगा। सुखमें और उसके साधनमें जितना-जितना आत्माका सामीप्य होता है, उतना-उतना स्थायित्व और सूक्ष्मता होती है। अपने-अपने सम्प्रदायमें जो लोग सुखका जो-जो आकार बना लेते हैं, उन्हें उसीमें सुखी होने देना चाहिए। उसमें बाधा डालनेका कोई कारण नहीं है। भले ही वह कल्पना हो, भाव हो, चेष्टा हो, कर्म हो, सम्बन्ध हो या द्रव्य हो। वस्तुतः सुख अपना स्वरूप है और जिसपर हम अपने मनका हाथ लगा देते हैं, वही सुखरूप हो जाता है। सभी प्राणियोंका, कीट-पतङ्गोंका भी अपना-अपना सुख है; उसमें बाधा न डालना, सुविधा उत्पन्न करना धर्म है।

(४) आत्मा अद्वय है—इसका निष्कर्ष यह निकलता है कि भेद-भाव करना और कराना अज्ञान-मूलक भ्रान्ति है। इस भ्रान्तिके कारण अपना-पराया, ऊँच-नीच, शत्रु-मित्र, राग-द्वेष, वैमनस्य-सङ्घर्ष, कलह एवं युद्धकी सृष्टि होती है। इसी द्वैत-भ्रमके वशीभूत होकर सच्चे ज्ञानका आदर न करके

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अर्वाचीन-प्राचीनका झगड़ा खड़ा कर देते हैं। झूठी भौगोलिक सीमाएँ खींच-खींचकर प्रान्त, राष्ट्र, द्वीप आदि बना लेते हैं और उनके लिए लड़ते हैं। जातीयता, वर्गवाद, प्रान्तीयता, भाषाभेद—सब इसीकी देन है। आत्मसत्य अद्वय है। इसमें द्वैत-भ्रम मिटानेके लिए साधनके रूपमें द्वैतको स्वीकार करना दूसरी बात है और द्वैत, दुःख, मूर्खता एवं भयको बढ़ाना दूसरी बात। स्वयं भेद-भ्रान्तिमें फँसकर इन दुःखोंको बढ़ाना अधर्म है और दूसरोंको इसके लिए बढ़ावा देना भी अधर्म है। आत्माके अद्वय होनेका प्रथम निष्कर्ष यह है कि स्वयं भेद-भावसे मुक्त रहकर दूसरोंको भी भेद-भावमें न डाले।

आत्माकी अद्वयताका दूसरा निष्कर्ष यह है कि अपने आत्माके अतिरिक्त दूसरी कोई वस्तु नहीं है, अर्थात् सब अपना आत्मा ही है। अपने आत्माके रूपमें भासनेवाली वस्तुमें जितना प्रेमभाव, आत्मरूपता और आत्मीयता रहती है, उतनी ही पराये रूपमें भासनेवालोंके प्रति भी होनी चाहिए। अपने हृदयमें सबके प्रति प्रीति रहे और दूसरोंके हृदयमें मेल-मिलाप, आत्मीयताकी वृद्धि हो—यही मनुष्यका धर्म है। इस अद्वयतामें नासमझी, अभिमान, राग-द्वेष, भय—सबकी निवृत्ति हो जाती है। इसका व्यावहारिक पक्ष यह है कि जैसे अपने प्रति की हुई चोरी, हिंसा आदि बुरी लगती है और स्तुति, सम्मान आदि अच्छे लगते हैं, वैसे ही दूसरे शरीरमें बैठे हुए आत्मदेवको लगते हैं। इसीसे दूसरेके प्रति जो व्यवहार किया जायगा, वह अपने प्रति भी हो जायगा; क्योंकि आत्मा तो एक ही है।

यह सामान्य धर्मका आधार है। यही आत्मा विशेष धर्मका आधार कैसे बनती है? इसके लिए पृथक् विचार करना उचित होगा। • • •

भगवान् बुद्धका मनन

अविद्यासे संस्कार होता है; संस्कारके कारण विज्ञान, विज्ञानके कारण नामरूप, नामरूपके कारण छः आयतन, छः आयतनके कारण स्पर्श, स्पर्शके कारण वेदना, वेदनाके कारण तृष्णा, तृष्णाके कारण उपादान, उपादानके कारण भव, भवके कारण जन्म और जन्मके कारण जरा, व्याधि, शोक, दुःख, मृत्यु, चित्तविकार एवं खेद होता है। संसार केवल दुःखोंका पुञ्ज है। जरा, व्याधि एवं मृत्युके कारण प्राणियोंका जीवन दुःखमय हो रहा है। इन महादुःखोंसे मुक्ति-हेतु मैं प्रव्रज्या लूँगा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शाङ्करभाष्य एक अध्ययन

• स्वामी श्रीसच्चिदानन्देन्द्र सरस्वती

[गताङ्कसे आगे]

२४. अबतक यह निश्चय किया गया कि वेदान्त-शास्त्रमें दो प्रकारसे ब्रह्मका उपदेश मिलता है। ब्रह्म और आत्माकी एकताकी प्रधानतासे निरुपाधिक ब्रह्मका और उपासनाकी प्रधानतासे सोपाधिक ब्रह्मका। यह भी स्पष्ट हो गया कि परमार्थतः ब्रह्म निरुपाधिक ही है; क्योंकि स्वरूप-प्रतिपादक वाक्य निर्विवाद और निर्विरोध-रूपसे उसीमें तात्पर्य रखते हैं। उसके लिए निरुपाधिक, निष्प्रपंच, निर्विशेष, निर्गुण, कारण, मुख्य, पर आदि शब्दोंका प्रयोग हुआ है और उपासना-विधिके प्रसंगमें सोपाधिक, सप्रपंच, सविशेष, सगुण, कार्य, अमुख्य, अपर आदिका। ब्रह्ममें पर और अपरका विभाग भी वेदान्तोक्त ही है। देखिए, प्रश्नोपनिषद् (५।२) 'एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारः' इत्यादि। सभी उपाधियाँ अविद्याके द्वारा ही उपस्थापित होती हैं इसलिए उनके कारण ब्रह्मकी अद्वितीयतामें कोई बाधा नहीं पड़ती। जैसा कि पहले कहा जा चुका है—अविद्यासिद्ध आकार, गुणादि भी व्यावहारिक दृष्टिसे सत्य ही होते हैं। सर्वशक्ति ब्रह्म ही सर्वनाम-रूपका कारण है अतः सब कुछ उसमें अनन्य होनेके कारण वही सर्वात्मक है (ब्र. सू. भा. २।१।२४)। यही कारण है कि उपासकोंको अर्चिरादि मार्गसे ब्रह्मकी प्राप्ति होती है, ऐश्वर्य मिलता है और फल-भोगमें ईश्वरसे समता होती है—ये सब श्रुति-प्रतिपादित पदार्थ भी यथार्थ ही हैं।

इसके लिए देखिए ब्रह्मसूत्र-भाष्य ४।३।१४, ४।३।९। प्रश्नोपनिषद् ५।२ के भाष्यमें परापर दोनों

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ब्रह्मकी उपासनाके लिए ओंकारको ही आलम्बन बताया गया है। ओंकारमें परब्रह्मकी दृष्टि करना उपासना ही है, परमार्थ-निरूपणके साथ उसका कोई विरोध नहीं है। देखिए—ब्र. सू. भा. १।३।१३

ब्र. सू. भा. १।१।२० में आचार्य स्पष्ट कहते हैं कि पमेश्वर हिरण्यश्मश्रु, हिरण्यकेश भी हो सकता है; क्योंकि परमेश्वर अपनी इच्छासे साधकोंपर अनुग्रह करनेके लिए मायामयरूप धारण करनेमें समर्थ है। महाभारतके मोक्षपर्व ३३९वें अध्यायमें नारायण नारदसे कहते हैं 'नारद ! जो तुम मुझे शब्द-स्पर्श-रूपादि गुणोंसे युक्त देख रहे हो, यह तो मैंने मायाकी सृष्टि की है। परमार्थतः तुम मुझे ऐसा मत समझना। जहाँ अशेष-विशेष-निषेधावधि-रूपमें परमेश्वर-का निरूपण होता है, वहाँ '**अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययम्**' इस प्रकारका वर्णन होता है। सर्व-कारण होनेके कारण कभी-कभी, किसी-किसी विकार-धर्मसे विशिष्ट परमेश्वरका भी निर्देश होता है। वह उपदेश उपासनाके लिए है। देखिए—छा. ३।१४।१२ '**सर्वकर्मा सर्वकामः सर्वगन्धः सर्वरसः**'। ठीक इसी प्रकार हिरण्यश्मश्रुका उपदेश-निर्देश भी सविशेष और उपासना-शेष है।

ब्र. सू. भा. ४।३।७ में आचार्य निरूपण करते हैं कि बादरि आचार्यके मतमें अमानव पुरुष उपासकोंको कार्य, सगुण अथवा अपर-ब्रह्मके पास ही ले जाता है; क्योंकि वहीं जाया जा सकता है। कार्य-ब्रह्म ही गन्तव्य है; क्योंकि उसमें प्रदेश हैं। परब्रह्ममें गन्ता, गन्तव्य अथवा गतिको कल्पना नहीं हो सकती। वह स्वयं सर्वगत है और गन्ताओंका प्रत्यगात्मा ही है।

आत्मा सर्वगत है तो भी जैसे घटादिके चलनेपर घटाकाशको चलता हुआ-सा समझा जाता है वैसे ही बुद्धि आदिके गमनागमनसे आत्मामें गमनागमनकी कल्पना होती है। देखिए—ब्र. सू. भा. ४।३।१४

मुक्तोंको अणिमा आदि दूसरे ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं, परन्तु जगत्-की सृष्टि, स्थिति, प्रलय करनेका अधिकार नहीं होता। वह तो केवल नित्य-सिद्ध ईश्वरका ही काम है। (ब्र. सू. भा. ४।४।२१)।

विकारालम्बी उपासकोंको निरंकुश ऐश्वर्यकी प्राप्ति न होनेका एक यह भी कारण है कि श्रुतियोंने अनादि-सिद्ध ईश्वरके साथ उनके भोग-मात्रका ही साम्य बताया है। (ब्र. सू. भा. ४।४।२१)।

३५. सभी उपासनाएँ अविद्याके ही अन्तर्गत हैं तथापि

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानकाण्डमें उनका विधान अयुक्त नहीं है; क्योंकि यह भी तो विद्या ही है। मनोवृत्ति-रूप समानता दोनोंमें ही है। उपासनाएँ कर्म-समृद्धिके लिए, अभ्युदयके लिए की जाती हैं और उनमें कर्मकी समानता भी है तथापि मनमें ही होती हैं, अन्तर्मुख करनेके कारण ज्ञानकी अन्तरंग साधन हैं और उनसे क्रम-मुक्ति भी मिलती है। इन सब विलक्षणताओंके कारण वे सब कर्मसे अलग हैं और अद्वैत ज्ञानके प्रकरणमें उनका उल्लेख असंगत नहीं है। ज्ञान और उपासना—दोनों ही मानस होनेपर उनके स्वरूपमें भेद भी है। इसलिए श्रुति-स्मृतिमें अलग-अलग और एक साथ भी उनका निरूपण मिलता है। ध्यान अथवा उपासना कर्ताके व्यापारसे सम्पन्न होते हैं। इनके लिए शास्त्रमें विधान भी है। वे एक प्रकारके मानस कर्म ही हैं इसलिए कर्मवत् हैं। ज्ञान भी मनोवृत्ति है परन्तु वह प्रमाणसे उत्पन्न होता है और प्रमेय वस्तुके अनुसार होता है। कर्ता अपनी इच्छाके अनुसार उनको नहीं बदल सकता, अतएव उपासना अध्यारोपित कारक एवं फलकी अपेक्षा रखनेवाली है, कर्म है। ज्ञान सम्पूर्ण अध्यारोपोंका अपवाद करके आत्मवस्तुकी अधिगति है।

यद्यपि ध्यान, चिन्तन मानस हैं तथापि मनुष्य उसके करने, न करने और उलट देनेमें समर्थ हैं; क्योंकि वह कर्ताके अधीन है। ज्ञान प्रमाणजन्य है। वह वस्तुके स्वरूपके अनुरूप होता है। उसे करने, न करने, या उलटनेमें मनुष्यका सामर्थ्य नहीं है। वह वस्तु-तन्त्र ही है। न आदेश-उपदेशके अधीन है और न तो कर्ताके। इसलिए ज्ञान और ध्यान—दोनों मानस होनेपर भी परस्पर अत्यन्त विलक्षण हैं। उदाहरणके लिए समझिये कि छान्दोग्यमें पुरुष और स्त्रीके प्रति अग्नि-बुद्धि करनेका विधान है। वह मानसी है परन्तु केवल विधानसे होनेके कारण एक कर्म है और कर्ताके अधीन है; परन्तु जो प्रसिद्ध अग्निमें अग्नि-बुद्धि है वह न आदेश-उपदेश-जन्य है और न तो पुरुष उसे करने, न करने या उलटनेमें समर्थ है। तब वह क्या है? प्रत्यक्ष प्रमाणके विषय वस्तुके अधीन है। वह ज्ञान है, न क्रिया है, न उपासना। उसको छोड़ने और उलटनेका सामर्थ्य किसमें है? करनेकी भी तो आवश्यकता नहीं है। यह सभी प्रमाणोंके विषय-वस्तुके सम्बन्धमें एक-सा ही नियम है। (ब्र० सू० भा० १।१।४)।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपासनाका विवरण देखिए—(बृहदा० भा० १।३।९) श्रुतिमें उपास्य-सम्बन्धी अर्थवादके प्रसंगमें देवताका जैसा स्वरूप बतलाया गया है, मनसे उसके पास पहुँचकर बैठना अर्थात् चिन्तन करना उपासना है। बीचमें कोई लौकिक प्रत्यय नहीं आना चाहिए। जैसे लोकमें 'मैं ब्राह्मण हूँ' इत्यादि अभिमान होता है, वैसा ही अभिमान जबतक देवता आदिके स्वरूपके सम्बन्धमें नहीं होता, तबतक उपासना करनी चाहिए।

छान्दोग्य सम्बन्ध-भाष्यमें उपासनाओंको अभ्युदयका साधन कहा गया है। ये कैवल्यके बहुत पासतक पहुँचा देती हैं। अद्वैतसे कुछ न्यून हैं। इनका फल कर्म-समृद्धि है। इनका सम्बन्ध कर्माङ्गसे है। रहस्यात्मक और मनोवृत्ति-रूप होनेके कारण अद्वैत विद्याके प्रकरणमें इनका वर्णन है।

उसी सम्बन्ध-भाष्यमें यह कथन भी है कि अद्वैत-विज्ञान निष्क्रिय आत्मामें अध्यारोपित कर्ता, कारक, क्रिया, फलके भेदका निवर्तक है, जैसे रज्जु-सर्पको निवृत्त करनेवाला प्रकाश। उपासनाका अर्थ यह है कि शास्त्रके अनुसार आलम्बनको स्वीकार करके उसमें चित्तवृत्तिका समान प्रवाह किया जाय। उससे विलक्षण प्रत्यय मनमें न आवे। उन्हें अन्तःकरण-शुद्धिका साधन भी कहा गया है। शास्त्रीय धर्म और उपासना ही कल्याणकारी हैं। अशास्त्रीय धर्म अपने अन्दर हो, तब भी कल्याण नहीं होता।

ब्र० सू० भा० (३।२।२१) में कथन है कि आज्ञा देनेपर भी प्रमाण-सिद्ध वस्तु अन्यथा ज्ञात नहीं हो सकती। यदि कोई अपनेको आज्ञाकारी मानकर ज्ञानको बदलना चाहे तो वह एक मानसी क्रिया होगी; ज्ञान नहीं और यदि ज्ञानके विपरीत दूसरा

देवदूत जोरोस्टर या जरदस्तु

सत्यके प्रचारसे मैं तबतक विरत न होऊँगा जबतक मुझमें शक्ति है। मैं भगवान्‌का हूँ। मैं उनकी इच्छाकी पूर्ति करूँगा। मैं धर्मका तत्त्वज्ञान लोगोंको सुनाऊँगा। धर्म भगवान्‌की वाणी है। हम उसका अनुभव अपनी चेतना द्वारा करते हैं। सत्यका दर्शन आध्यात्मिक दृष्टि द्वारा होता है और भगवान्‌का दर्शन शुद्ध मनसे। मानव जीवनका उद्देश्य हौरवतत्=पूर्णता एवं अमरतत्=अमरत्व है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञान ही उत्पन्न हो जाय तो वह भ्रम ही होगा।

प्रमाणान्तरसे निश्चित वस्तुमें आज्ञाकारीको कोई दूसरा ज्ञान उत्पन्न नहीं होता, वस्तु-विषयक ज्ञान ज्यों-का-त्यों बना रहता है। सौ बार आज्ञा देनेपर भी कि 'यह प्रतिमा नहीं, विष्णु हैं', प्रतिमाबुद्धि निवृत्त नहीं होती। विष्णु-बुद्धि पुरुषके प्रयत्नसे उत्पन्न होती है, वह ध्यान है, मानसी क्रिया है। यदि अन्धकारादि-रूप किसी दोषके कारण मूर्तिको ही मनुष्य समझ लिया जाय तो वह भ्रम ही है, ज्ञान नहीं।

उपनिषद् एवं गीतामें इस प्रकारके अनेक प्रकरण हैं जिनमें ज्ञान और उपासनाको अलग-अलग विविक्तरूपमें समझा जा सकता है।

३६. सबका अपना आत्मा ही ब्रह्म है। उसका स्वभाव है—साक्षात् अपरोक्षता। वह केवल अविद्यासे ही व्यवहित है। इन सिद्धान्तोंके सिद्ध हो जानेपर यह अपने आप ही निष्पन्न हो जाता है कि वेदान्त वाक्यका ज्ञान ही सर्वविध अध्यारोपका प्रतिषेध कर देता है, इसके लिए अन्य किसी प्रमाण या साधनकी आवश्यकता नहीं है। **'औपनिषदः पुरुषः'** (बृ० ३।९।२६)। भाष्यकारने इसका अभिप्राय बतलाया है कि उपनिषदोंमें ही प्रधानतासे प्रकाश्यमान होनेके कारण ब्रह्म पुरुषका विशेषण है—औपनिषद। 'आचार्यवान् पुरुषो वेद' (छा० ६।१४।२)–इसके भाष्यमें आचार्यका कथन है कि 'यदि केवल कर्तव्यरूपमें 'मैं सत् हूँ'—इस बुद्धिका विधान करना होता तो मनुष्य स्वयं कर लेता, परन्तु यहाँ तो ज्ञानके उपायका उपदेश किया गया है कि आचार्यसे ही ज्ञानकी प्राप्ति होती है।' वेदान्त-सम्प्रदायवित् आचार्यके उपदेशसे गम्य है—ब्रह्म। जिनकी बुद्धि बाह्य विषयोंसे अपहृत है अथवा जिनका चित्त विषयवासनासे कलुषित है उनके लिए वेदान्त वाक्य अथवा आचार्योपदेश ब्रह्मात्मैक्य-बोधके लिए पर्याप्त नहीं है। उनके अन्तःकरणकी शुद्धिके लिए और प्रत्यगात्माकी ओर उन्मुख होनेके लिए कर्म और उपासनाओंका उपदेश श्रुति-स्मृतियोंमें प्राप्त होता है। दुश्चरितसे विरत होनेपर ही धर्म शोधक होता है। **'आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।'** कर्मसे जिसकी बुद्धि शुद्ध है और अन्तर्मुख है, उसीका उपासनामें अधिकार है; क्योंकि उपासना मानस-साधना है। अन्तर्मुखके लिए श्रौत शमदमादि और स्मार्त अमानित्वादि ज्ञानके साधन हैं। श्रवण, मनन, निदि-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ध्यासन साक्षात् अन्तरङ्ग हैं। वे सीधे ज्ञेयको विषय करते हैं और उसको प्रकाशित करते हैं। कर्म बाह्य प्रतिबन्धक दूर करते हैं। शमादि और अमानित्वादि अन्तः-करण शुद्ध करते हैं। श्रवणादि साक्षात् वस्तुको प्रकाशित करते हैं।

काठक भाष्य १।२।९ में यह स्पष्ट कर दिया गया है कि वैदिक ज्ञान तार्किक व्यक्तिके उपदेशसे प्राप्त नहीं होता। उसके लिए सम्प्रदाय-रहस्यका ज्ञाता आचार्य चाहिए। वहाँ 'आगमाभिज्ञ' शब्दका प्रयोग है।

गीताभाष्य (४।३४-३५)में और भी स्पष्ट है। तत्त्वदर्शी ज्ञानीके द्वारा उपदिष्ट ज्ञान ही अविद्या-निवर्तक होता है। भगवान्का कहना है कि उनके द्वारा उपदिष्ट ज्ञानका अधिगम हो जानेपर पुनः मोहकी प्राप्ति नहीं होती।

जैसे विद्याहीन ब्राह्मणकी अपेक्षा विद्वान् ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है, वैसे ही विद्याहीन कर्मकी अपेक्षा विद्या-युक्त अग्निहोत्रादि कर्म श्रेष्ठ होते हैं; क्योंकि विद्या अथवा विवि-दिषाके रूपमें उनकी स्तुति मिलती है। 'विद्या, श्रद्धा और उपनिषद्से जो कर्म किया जाता है वह वीर्य-वत्तर होता है। (छा० १।१।१०)।' (ब्र० सू० भा० ४।१।१८)—इस प्रसंगमें केवल कर्म और उपासना-समुच्चित कर्म—दोनोंको ही ज्ञान-साधना कहा गया है। गीता (५।११)में कर्मके द्वारा अन्तः-करण शुद्धिका उल्लेख है।

ब्र० सू० भा० ३।४।२७ में प्रतिपादित है कि विद्यार्थीको शमदमादिसे युक्त होना चाहिए। बृहदारण्यक (४।४।२२) के अनुसार शान्त, दान्त, उपरत, तितिक्षु एवं समाहित होकर आत्मामें ही आत्मदर्शन प्राप्त किया जाता है। यहाँ विद्या साधनके रूपमें शम-दमका विधान है और वे अवश्य अनुष्ठेय हैं। फलाभि-सन्धिशून्य कर्म ज्ञान-साधन होते हैं—यह गीतामें भी स्पष्ट है। यज्ञादि बाह्य हैं और शमदमादि विविदिषाके संयोगसे आन्तर हैं।

काठकोपनिषद् (१।२।२४)में दुश्चरित, इन्द्रियलोलता, चित्तकी चंचलता और समाधिके फलसे भी विरत होकर आचार्यकी शरण ग्रहण करता है—ऐसा कहा है।

गीताभाष्य (२।२१)में भी शास्त्राचार्योपदेश संस्कृत एवं शमदमादि-सम्पन्न मनको आत्म-दर्शनका करण कहा है। गीता-भाष्य (१८।५५)में भी यही कहा है कि जब इन साधनोंसे क्षेत्रज्ञ और परमात्माके एकत्वका ज्ञान हो जाता है तब कर्तृत्वादिका

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विधूनन करके स्वात्मानुभवमें अवस्थान होता है, वही पराज्ञान-निष्ठा है। गीता (४।३९)में श्रद्धा, तत्परता और इन्द्रिय-संयमको ज्ञान-लाभका साधन कहा है।

बृ० भा० (१।४।२)में भी श्रद्धा आदिसे अधर्मके निमित्तका वियोग होता है परन्तु श्रवण, मननादि साक्षात् ज्ञेयको स्पष्ट करते हैं। पापादि प्रतिबन्धोंका क्षय होनेपर ही आत्मा और मन परमार्थ वस्तुको जाननेमें समर्थ होते हैं। बृ० (२।४।५)में श्रवणादि तीनको ही आत्मदर्शनका हेतु बताया है और स्पष्ट कहा है कि आत्माके दर्शन, मनन और विज्ञानसे सब कुछ विदित हो जाता है।

पैगम्बर मुहम्मद्का उपदेश

मृत्यु सरपर है। एक दिन अवश्य मरना है। मरकर ईश्वरके यहाँ जाना है। कर्मानुसार फल मिलेगा। यदि ईमान लाकर भी नेक काम न किये तो तुमपर कोई बड़ा अजाब आयेगा। तुम केवल यह लोक देख रहे हो, परलोक नहीं देख सकते। मैं दोनों लोकोंको देख रहा हूँ। मैं तुम्हें वह बातें बता रहा हूँ जिससे तुम अनभिज्ञ हो। जो भगवान्की सृष्टि एवं उनकी सन्तानोंके साथ स्नेह नहीं करते उनके साथ ईश्वर स्नेह नहीं करेगा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तमिल प्रदेशमें शैव-धर्म

डॉ० पी० जयरामन

[समन्वय, सामञ्जस्य, सामरस्यपूर्ण शैव-धर्म, भक्तिका आस्वादन कीजिये]

हिमाचलसे लेकर कन्याकुमारी-तक और कच्छसे लेकर असमतक परिव्याप्त हमारे विशाल राष्ट्र भारतवर्षकी संस्कृति समन्वयात्मक है और यह विशाल सागरकी भाँति विभिन्न संस्कृति-धाराओंको सनातन कालसे अपनेमें समाहित किये आ रही है। न जाने, कितनी मानव जातियाँ इस भारत-भूमिमें आयीं और आजके भारतवर्षके निर्माणमें अपना हाथ बँटा गयीं। जिसे हम आज भारतीय संस्कृति कहते हैं वह अनेक आर्य तथा आर्येतर उपादानोंका आश्चर्यजनक मिश्रण है। इस भारतीय संस्कृतिकी आसेतु हिमालय परिव्याप्त मूलभूत एकात्मताका ही यह परिणाम है कि विभिन्न प्रदेशोंके आदर्शों, जीवन-पद्धतियों तथा वैचारिक प्रक्रियाओंमें कोई मौलिक अन्तर नहीं पाया जाता। भारतीय संस्कृतिकी एकता तथा राष्ट्रीय स्वरूपके संदर्भमें यह उल्लेखनीय है कि बिना किसी प्रादेशिक विषमताके, सारे भारतमें अत्यन्त प्राचीन कालसे आजतक जीवनगत चरम साध्यके रूपमें आध्यात्मिकताको मान्यता मिली है। वस्तुतः, भारतकी संस्कृति किसी जाति-विशेष अथवा प्रदेश-विशेषकी निर्मिति नहीं है, वरन् यह समग्र भारतीय चेतनाकी सृष्टि है। वह न आर्य संस्कृति है और न द्राविड़ संस्कृति; किन्तु मानवीय सांस्कृतिक चेतनाओंका समवेत रूप है।

ईसा-पूर्वकालसे उत्तरके आर्यों तथा विन्ध्य और उसके दक्षिण भागमें रहनेवाले आर्येतरोंका जो समन्वय हुआ उसका प्रमाण ईसापूर्व दूसरी-तीसरी शतीके आस-पासका तमिल व्याकरण 'तोल्‌काप्पियम' है जिसमें विष्णु, इन्द्र, कार्तिकेय आदि आर्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

देवताओंका उल्लेख है। इसका मूल कारण महर्षि अगस्त्य, परशुराम आदि आर्यवंशी महापुरुषोंकी दक्षिणी यात्राओंसे उस प्रदेशमें हुआ जहाँ आर्य-वैदिक धर्मका प्रचार था। इसी प्रकार रुद्र और शिवका एकीकरण, कार्तिकेय और मुरुगन (तमिल प्रदेशमें प्रचलित कार्तिकेयका नाम)का समन्वय, शक्ति और कोट्रवै (तमिल प्रदेशकी दुर्गा देवी)का समीकरण आदि आर्यों एवं आर्येतरोंकी संस्कृतियोंके समन्वयनके प्रमाण हैं। उत्तरसे उद्भूत भागवत-धर्म, उसके आधारभूत वेदों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, वेदान्तसूत्र आदि तथा विष्णुपुराण प्रभृति अन्यान्य पुराणों द्वारा प्रतिपादित आर्यधर्मका प्रभाव सारे दक्षिणने स्वीकार किया और अनन्तर दक्षिणके शंकर, रामानुज, मध्व आदि दार्शनिक आचार्यों द्वारा अध्यात्म विद्याने सप्तम शतीसे विभिन्न विकृत मत-मतान्तरोंसे दिग्भ्रान्त हो रहनेवाले उत्तर भारतका मार्गदर्शन किया। यह उत्तर और दक्षिणकी सांस्कृतिक समन्वयात्मकताका ज्वलन्त प्रमाण है।

रामभक्ति एवं कृष्णभक्तिकी भाँति शिवभक्तिको भी समग्र भारतीय जन-मानसने स्वीकार किया था। प्राचीन कालसे आजतक सारे भारतमें भगवान् विष्णु एवं उनके राम, कृष्ण आदि अवतारोंका उपासना-विधान जिस प्रकार प्रचलित होता आ रहा है उसी प्रकार भगवान् शिवजीकी भी आराधनाका अटूट क्रम भी चला आ रहा है। मत-मतान्तरोंके घटाटोपके वातावरणमें वैष्णव धर्म एवं शैव धर्मके अनुयायियोंके बीच भले ही अनेक प्रकारके संघर्ष हुए हों, फिर भी विष्णु एवं शिवजीको एक दूसरेकी उपासना करते हुए परिदर्शितकर हमारे प्राचीन आचार्यों एवं संतोंने प्रायः हरि-हरका समन्वय करनेका ही प्रयास किया है। महाभारतके परिशिष्ट-रूप हरिवंशपुराणमें शिव-विष्णुकी समरूपताका प्रतिपादन कर कहा गया है;

'रुद्रस्य परमो विष्णुः
विष्णोश्च परमः शिवः।
एक एव द्विधा भूतो
लोके चरति नित्यशः॥'

इसी शिव-विष्णु-एकात्मताको हम बादमें भक्तकवि तुलसीदासजीकी कृतियोंमें देखते हैं। वे दोनोंकी अभेदरूपताको दर्शाते हुए 'मानस'में कहते हैं;

'हरि-हर-पद-रति
मति न कुतरकी।
तिन्ह कहुँ मधुर
कथा रघुबीर की॥'

इस प्रसङ्गमें जब हम तमिलके भक्तिकालीन (पाँचवीं शतीसे नौवीं शतीतक) साहित्यको देखते हैं तो वहाँ भी हमें एक ओर विष्णु-भक्त कवि और आलवारोंकी भाव-भीनी भक्ति-गद्गद वाणी सुनायी पड़ती है

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और दूसरी ओर उन्हीं आलवारोंके समकालीन शिवभक्त कवि नायन्‌मारोंकी शैव भक्ति-रससे ओतप्रोत अमृतमयी वाणीके रूपमें कश्मीरसे लेकर कन्याकुमारीतकके समग्र भारतीय वातावरणमें समान-रूपसे प्राचीन कालसे बहती आनेवाली शैव भक्तिकी अजस्र धाराका प्रवाह परिलक्षित होता है। तमिलनाडुमें ईसवी छठी शतीके पल्लव राजाओंके शासन-कालमें शैव धर्म एवं शैव साहित्यका अपार विकास हुआ। पाँचवीं शतीसे नौवीं शतीतक तमिल प्रदेशमें तिरसठ शैव सन्त कवि हुए जिनमें ब्राह्मण, कृषक, सामन्त, वणिक्, नाविक, धोबी, व्याध आदि सभी वर्गोंके लोग थे। इन शैव आचार्योंको नायन्‌मार (अर्थात् भक्तिकी पराकाष्ठाकी दशामें पहुँचकर भगवान् शिवजीपर भी स्नेहपूर्वक शासन करनेवाले नायक होनेसे वे नायन्‌मार कहलाये) कहा जाता है। इनमें चार सन्तकवि प्रमुख माने जाते हैं—अप्पर, ज्ञान-सम्बन्धर, सुन्दरर और माणिक्कवाचकर। इन चारों कवियोंने शिव-भक्ति-रससे आप्लावित सहस्रों पदोंकी रचना की है। इनमें-से माणिक्कवाचकरके पदोंका सङ्कलन 'तिरुवाचकम' अर्थात् श्रीवाणी और अन्य तीन भक्त-कवियोंके पदोंका सङ्कलन 'तेवारम्'के नामसे विख्यात है। तेवारम्‌का तात्पर्य है देवहारम् अर्थात् भगवान् शिवजीको पहनायी जानेवाली मधुर गीत-माला। जन-सामान्यमें इन कवियोंके गीतोंको वेदोंके समान मान्यता प्राप्त है और उन गीतोंको गा-गाकर तमिल-भाषी जनता सगुण शिवजीकी भक्तिकी धारामें निमज्जित रहती है।

उक्त चारों शिवभक्त कवियोंके गीतोंने जन-जीवनको अमृत-मन्त्र प्रदान किया और उनके गीतोंमें अभिव्यक्त स्वानुभूतिकी गम्भीरताने पामर जनता-तकको अत्यधिक अभिभूत किया। विष्णु-भक्तिके समान शिवभक्ति भी भारतीय भक्तिपथकी एक अद्भुत देन है। भारतीय जन-जीवनमें शिव-विष्णु-भक्तिका समान-रूपसे समादृत स्थान है। दक्षिणके लोगोंका विश्वनाथजीकी उपासनाके लिए काशीकी यात्रा करना और उत्तरके लोगोंका रामेश्वरम्‌की यात्रा करना इसी तथ्यका प्रमाण प्रस्तुत करता है। यह भी भारतीय संस्कृतिकी एकात्मताका ही निदर्शन है।

तमिलके उपर्युक्त चार शिवभक्त कवियोंका इस संदर्भमें परिचय देना अप्रासंगिक नहीं होगा।

अप्पर

उपर्युक्त 'तेवारम्'के गीतोंके रचयिताओंमें कालक्रमसे अप्पर प्रथम थे। उनका दूसरा नाम था तिरुनावुक्करशर या वागीश। वे पल्लव-नरेश महेन्द्रवर्मा (ई० ७००–७३०) के समकालीन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

थे। उनका समय ईसाकी छठी शतीके तृतीय चरणसे लेकर सातवीं शतीके मध्यतकका था। अप्परके सम्बन्धमें इतना ज्ञात होता है कि वे प्रारम्भमें जैन थे, उनका प्रारम्भिक नाम क्षुल्लक धर्मसेन था। लेकिन एकवार उनके पेटमें भयानक पीड़ा हुई। पीड़ाके असह्य होनेपर वे अपनी बहन तिलकवतीके यहाँ पहुँचे जो शिवजीकी बड़ी भक्तिन थी। बहनने जब अप्परको शिवजीके प्रसादके रूपमें 'विभूति' प्रदान की तो उसे ग्रहण करनेमात्रसे उनकी पीड़ा लुप्त हो गयी। तबसे उन्होंने जैन धर्मका परित्यागकर शैव-धर्मको स्वीकार कर लिया। यह भी कहा जाता है कि जैनाचार्योंकी प्रेरणासे जैनधर्मके अनुयायी पल्लव-नरेश महेन्द्रवर्माने अप्परको कई यातनाएँ पहुँचायीं। उनसे अप्पर कथमपि विचलित नहीं हुए; प्रत्युत उनकी शिव-भक्ति क्रमशः प्रगाढ़तर होती गयी। एकवार महेन्द्रवर्माने अप्पर (वागीश) को धर्म-परिवर्तनके कारण दण्डित करनेके विचारसे अपने मन्त्री आदिको उन्हें पकड़ लानेकी आज्ञा दी। वे लोग अप्परके पास आकर जब कहने लगे कि महेन्द्रवर्माका विरोध मोल लेना उचित नहीं है। वे राजा हैं, उनकी शक्ति अपार है। आप प्रजा-मात्र हैं; उनका दास्य स्वीकार करनेमें ही आपका कल्याण है; तब वागीश शिव-भक्तिकी महत्ताका प्रतिपादन करते हुए मधुर गीत-वर्षा करने लगे। वह गीत इस प्रकार है;

"नामार्कुम् कुडि अल्लोम्,
नमनै अंजोम्,
नरकत्तिल् इडर् पडोम्,
नडलै इल्लोम्।
एमाप्पोम्, पिणि अरियोम्,
पणिवोम् अल्लोम्,
इन्बमे एन्नालुम्,
तुन्बमिल्लै।"

अर्थात्, हम सिवाय शंकरजीके, किसी दूसरेकी प्रजा नहीं हैं। मृत्युसे हमें भय नहीं है। (भक्त मार्कण्डेयकी शिवजीने यमसे जो रक्षा की थी उसके प्रति यहाँ संकेत है।) नरक-यातनासे हम चिन्तित नहीं हैं। किसी बातपर हम गर्व नहीं करते। कोई रोग-शोक हम नहीं जानते। हमारा सिर शंकरके सिवाय किसी दूसरेके सामने झुकनेवाला नहीं है। शिवजी स्वयं आनन्द-स्वरूप हैं। अतः हमें यत्र-तत्र-सर्वत्र और सर्वदा आनन्द ही आनन्द है; लेश-मात्रका भी दुःख नहीं है।

वागीशकी यह गर्जना सुननेके बाद भी सिपाही उन्हें पकड़कर महेन्द्र वर्माके पास ले गये। राजाने उनके अभिमानकी बातें सुनकर उन्हें चूनेकी भट्ठीमें डाल देनेका आदेश दिया। वागीश कहाँ विचलित होनेवाले थे! चूनेकी भट्ठीमें रहकर भी वे शिवजीका ही ध्यान करने लगे। उन्हें भट्ठीकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऊष्मामें भी शीतलताका ही अनुभव होने लगा और वे गीत-मालाएँ पिरोकर भावनासे शंकरजीको पहनाने लगे। उस समयकी उनकी मधुर वाणीकी एक झाँकी इस प्रकार है;

'माशिल् वीणैयुम्
मालै मदियमुम्,
वीशु तेन्रलुम्,
वींगिलवेनिलुम्,
मूशु वण्डरै प्पोय्गैयुम्
पोन्रदे,
ईशन् एन्दै
इणैयडि नीलले।'

अर्थात्, मेरे ईश शंकरजीकी चरण-छाया अद्भुत है। वह निर्मल वीणानाद-सा मधुर है, पूनमकी चाँदनी-सा शीतल है, वहते मलय पवनके समान स्पर्श-मात्रसे पुलक भरनेवाला है, उत्फुल्ल मधुमासके समान आत्माको प्रफुल्लित कर देनेवाला है और मधुकर-गुञ्जारित कमल-सरके समान आपादशिख आनन्दोल्लास भर देनेवाला है। मधुर है मेरे ईशकी चरण-छाया।

चूनेकी भट्ठीका कोई प्रभाव वागीशपर नहीं पड़ा, तो महेन्द्रवर्मा न केवल चकित हुआ, अपितु प्रभावित भी इतना हुआ कि उनके पादोंपर गिर पड़ा, उनसे अपने अपराधके लिए क्षमा माँगी और शिव-भक्तिकी महिमाको हृदङ्गमकर तत्काल उनसे शिव-भक्तिकी दीक्षा भी ले ली। तबसे जैन-धर्मानुयायी महेन्द्रवर्मा शैव-धर्मका अनुगामी बना, शैव-धर्मके व्यापक प्रचारकी व्यवस्था की, विभिन्न प्रदेशोंमें भगवान् शिवजीके मन्दिरोंका निर्माण कराया और उनके नियमित उपासना-विधानकी शासकीय व्यवस्थाएँ भी कीं।

वागीश शिव-भक्तिकी तुलनामें किसी दूसरी वस्तुको नहीं मानते थे, वे शिवजीके भक्तोंके भी भक्त थे। उनकी मान्यता थी कि शिव-भक्तोंकी भक्ति और शिव-भक्तिके बीच कोई अन्तर नहीं है। उनकी दृष्टिमें, चाहे शंकरजीके भक्त किसी भी स्तरके क्यों न हों, स्वयं उपास्य हैं। गङ्गाधर शिवजीके भक्तोंकी महानताको निरूपति करते हुए वागीशने कहा है;

'अङ्गमेल्लाम् कुरैन्दलुह
तोलु नोयराय्,
आवुरित्तु त् तिन्रुललुम्
पुलैयरेनुम्,
गंगैवार् चडैक्करन्दार्कु
अन्वराहिल्,
अवर् कण्डीर याम्
वणंगुम् कडवुलारे।'

अर्थात्, चाहे घृणित कोढ़ी हो जिसका सारा अङ्ग गल गया हो और जिसके अङ्ग-अङ्गसे पीव वह रहा हो; चाहे गायके मासतकको खा डालनेवाला चाण्डाल हो—यदि वह मेरे उपास्य गङ्गाधर शंकरका भक्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हो तो वह मेरे लिए उपास्य शंकर स्वयं है।

अप्पर (वागीश) शिवभक्त होनेके साथ ही मानवमात्रकी एकता, समानता तथा भ्रातृत्वपर विश्वास करनेवाले मानवतावादी कवि भी थे। वे वंश, कुल, गोत्र आदिको भक्तिकी तुलनामें तुच्छ मानते थे। उनके विचारमें भक्ति सर्वोत्तम उपलब्धि है जिसके समक्ष विभिन्न शास्त्रोंका अध्ययन भी निरर्थक है। मानवकी मानवतापर उनकी अगाध आस्था थी। इसलिए वे उन अभिमानी शास्त्र-व्यसनियोंको जो शास्त्रोक्त तत्त्वोंका प्रचार तो करते हैं, किन्तु गोत्र, कुल आदिके नामसे मानव-मात्रमें व्यवधान उत्पन्न किया करते हैं, सम्बोधितकर गर्जना करने लगे;

'शात्तिरम् पल पेशुम्
शलक्कर्हाल्
गोत्तिरमुम् कुलमुम्
कोण्डु एन् शेय्वीर ?'

अर्थात्, नाना प्रकारके शास्त्रोंके सिद्धान्तोंकी घोषणा करनेवाले अभिमानी विद्वानो ! गोत्रों, कुलों आदिको लेकर आप क्या करेंगे ? उनसे क्या लाभ होगा ?

वस्तुतः, निर्भयता, निर्मोह, अटल भक्ति एवं अप्रतिरोध ये ही वे सिद्धान्त हैं जिनका अप्परने अपने आचरण और गीतों द्वारा प्रचार किया। उनकी शिव-भक्ति ऐसी अटल थी कि वे कहा करते थे, 'भगवान् शंकरजीका दायित्व है हमारा संरक्षण करना; हमारा तो कर्त्तव्य है सेवा करना और निर्लिप्त रहना। पत्थरके खम्भेसे बाँधकर हमें कोई सागरमें बहा दे; तब भी 'नमः शिवाय' मन्त्र ही हमारा संरक्षक होगा।'

अप्परने कुल मिलाकर ३११० गीतोंकी रचना की है—जिनमें प्रियतम भगवान् शिवजीके विछोहमें तड़पनेवाली प्रेयसी आत्माकी पीड़ा एवं वेदनाकी हूक है और साथ ही, शिवजीके साथ तादात्म्य-भाव तथा तज्जनित असीम आह्लादकी अभिव्यक्ति भी। वागीश या अप्पर समस्त चराचरको शिव-शक्तिके रूपमें देखते-देखते अन्तमें अपने अन्तरतममें ही शक्ति-समन्वित शिवजीके दर्शन करने लगे।

अप्परकी शिव-भक्ति साधन और साध्य दोनों है। उनके गीतोंका अद्यावधि तमिल प्रदेशके घर-घरमें जो गायन होता है वह शैव धर्मके व्यापक प्रचार-प्रसारका प्रमाण है। तमिल प्रदेशमें पाये जानेवाले अप्परके अनेक मन्दिर भी इसी तथ्यको प्रमाणित करते हैं।

(पुनः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तीन नान्दीश्लोकोंमें कालिदास द्वारा प्रतिपादित सारभूत तत्त्व

मूल संस्कृत लेखक : शास्त्ररत्नाकर श्री टी० के० गोपालस्वामी,
एम० ए०; एफ० आर० ए० एस० (लन्दन)

श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय-तिरुपति

'कालिदासो जगत्सर्वं शरीरं ब्रह्मणो वदन्।
नाटकत्रयनान्दीभिः व्याख्यत्त्रय्यंतसारवित् ॥'

[वेद-वेदान्तके सारवेत्ता कालिदासने अपने तीन नाटकोंके नान्दीश्लोकों द्वारा समस्त जगत्को ब्रह्मके शरीर-रूपमें प्रतिपादित किया है ।]

कवि-कुलके अग्रणी कालिदासने एक ओर रसनिष्ठ कव्योंकी रचना की है तो दूसरी ओर उन काव्योंके माध्यमसे वेदान्तप्रतिपादित विशिष्ट सिद्धान्तोंको प्रसङ्गानुसार कथाओंका वर्णन करते हुए ललित एवं चित्ताकर्षक भाषामें प्रस्तुत किया है । यद्यपि इस संसारमें गीतितत्त्वोंसे आवलित नाना प्रकारके ग्रन्थोंका प्रणयन हुआ है तथापि उनके पाठकोंकी संख्या कम है और उनके द्वारा निरूपित तत्त्वोंके अनुसार आचरण करनेवाले तो नगण्य ही हैं। किन्तु इस तथ्यके सन्दर्भमें दो मत नहीं है कि कालिदासने सामाजिकोंको वेद, पुराण, इतिहास, धर्मशास्त्र आदि द्वारा प्रतिपादित तत्त्वोंका ज्ञान प्रदान करनेके उद्देश्यसे अपनी कृतियोंका सृजन किया है । यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि कालिदासकी विशेष अभिरुचि अपनी रचनाओंके माध्यमसे श्रृंगार-रसकी निष्पत्ति करानेकी ओर है, फिर भी उसमें भी उन्होंने बड़ी निपुणतासे कामशास्त्रीय सिद्धान्तोंका ही निरूपण किया है । किन्तु इस तथ्यसे सभी लोग परिचित हैं कि कालिदासने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

व्यासकृत महाभारत, वाल्मीकिकी रामायण, मनुके धर्मशास्त्र, विभिन्न दर्शनों, वेदों आदिके तत्त्वोंका विश्व-कल्याणके निमित्त निरूपण करनेका उद्देश्य-लिये विभिन्न कथाओंकी सृष्टि की है और उनमें उदात्त शृंगार-रसका परिपोषण कर पाठक-वर्गके चित्तको समाकृष्ट किया है तथा साथ ही, उन्होंने महान् ऋषिके स्थानमें रहकर जनसामान्यमें उन तत्त्वोंका अनुष्ठान करनेकी बलवती शक्तिका संजनन भी करते हुए सर्वतोमुखी ख्याति प्राप्त की है। कवि कालिदासने प्रसिद्ध कथाओंको ग्रहणकर उनके विभिन्न प्रसंगोंके माध्यमसे उपनिषद्-प्रतिपादित सिद्धान्तोंको निरूपित करते हुए एक ओर कवियोंके बीच और दूसरी ओर वेदान्तियोंके बीच प्रतिष्ठापूर्ण पद प्राप्त किया है। इस कारण उनका स्थान समस्त कलाओंसे पूर्ण पूनमके चन्द्रमाकी भाँति अविकल एवं चमत्कारमय है। कवि कालिदासकी प्रतिभा तथा अभिरुचि जिस प्रकार काव्य-क्षेत्रमें खिली है उसी प्रकार वेदान्तके तत्त्वोंका प्रतिपादन करने और मानव-कल्याणके लिए उपादेय नीतियोंका निरूपण करनेमें भी पूर्णकाम है।

कविकुल-गुरु कालिदास इस प्रकार लोक-सामान्य तथा वेदोंके सार-तत्त्वोंके अभिज्ञाता हैं आर इस कारण उन्होंने अपने तीन नाटकोंके नान्दीश्लोकों द्वारा वेदान्तके ज्ञाताओंके लिए भी अगम्य तथा प्रस्थानत्रयके सारभूत सत्यमय एवं सुरुचिसंपन्न सिद्धान्तोंका अभिवर्णन किया है। उन्होंने इन श्लोकोंमें वेदान्त-वाक्योंमें परस्पर विरोधी तत्त्वों-जैसे प्रतीत होनेवाले महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तोंकी बड़ी विचक्षणताके साथ अत्यन्त सहजरूपसे एक साथ अभिव्यंजना की है।

कवि कालिदासने अपने मालविकाग्निमित्र तथा शाकुन्तल नाटकोंके नान्दी श्लोकोंमें इन तत्त्वोंका समानरूपसे उपबृंहण किया है। मालविकाग्निमित्रका नान्दो श्लोक इस प्रकार है;

'एकैश्वर्ये स्थितोऽपि प्रणतबहुफले यस्स्वयं कृत्तिवासाः
कान्तासम्मिश्रदेहोऽप्यविषयमनसां यः परस्ताद्यतीनाम्।
अष्टाभिः यस्य कृत्स्नं जगदपि तनुभिः बिभ्रतो नाभिमानः
सन्मार्गालोकनाय व्यपनयतु स वः तामसीं वृत्तिमीशः॥'

अर्थात् अपने भक्तोंको मनचाहा फल देनेका अनुपम भण्डार अपने पास होते हुए भी जो केवल हाथीकी खाल ओढ़कर ही अपना काम चला लेते हैं, अपने आधे शरीरमें अपनी पत्नीको बिठाये रहनेपर भी जो संसारके भोगोंसे अपना मन दूर हटाये रहते हैं और अपने आठों रूपोंसे सारे संसारका पालन करते हुए भी जो अभिमानको पास नहीं फटकने देते, ऐसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसारके स्वामी महादेवजी पापोंकी ओर ले जानेवाली हमारी बुद्धिको ऐसा मिटा दें कि हमारा मन अच्छे कर्म करनेमें ही लगा रहे।)

इस श्लोकके तीसरे पादमें निम्नलिखित विशिष्ट तात्पर्यका स्फुरण हुआ है; समस्त विश्वके स्वामी सर्वेश्वर भगवान् जड़-चेतनमय इस समस्त जगत्का अपने आठ स्वरूपोंसे पालन करते हैं। वे ही समस्त जगत्की आत्मा हैं। वे सर्वशरीरी होकर जड़-चेतनमय जगत्का अपने उपभोगके निमित्त उपयोग कर रहे हैं मानो जगत्के कर, चरण आदि ही उनके कर, चरण आदि हों। इस प्रकार वे ही भगवान् जगत्की स्थिति एवं प्रवृत्तिके आधारभूत होकर विराजमान हैं। जैसे मानवके कर, चरण आदि स्वयं अशक्त हैं, किन्तु मानवकी इच्छापर प्रवृत्तिशील और उस कारणसे प्रयोजनवान होते हैं और जैसे वे उसके शेषत्व स्वरूपको प्राप्तकरते हैं वैसे ही जड़चेतनमय जगत् भी भगवान्के आराधनमात्रका प्रयोजनवान है। इस प्रसङ्गमें उक्त श्लोकमें 'तनु' शब्दका जो प्रयोग हुआ है वह अपर शरीरका पर्याय है, भोगसाधनका नहीं। यहाँ रामानुजाचार्यका यह लक्षण घटित होता है, 'चेतनका जो शरीर-तत्त्व सर्वात्मन् द्वारा अपने निमित्त नियमन एवं धारण किया जा सकता है उसका वह शरीर-तत्त्व सर्वात्मन्का शेषरूप है।' कालिदासने भी 'बिभ्रति' शब्दके प्रयोग द्वारा भरण करने योग्य भर्ताके प्रति संकेत किया है और जगत्को उसके द्वारा नियाम्य एवं धारण करने योग्य शरीरके रूपमें निरूपित किया है। फिर वे शरीर क्या हैं? इस प्रश्नका समाधान कालिदासने शाकुन्तल नाटकके नान्दीश्लोकमें प्रस्तुत किया है।

**'या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविः या च होत्री
ये द्वे काल विधत्तः श्रुतिविषयगुणा याः स्थिता व्याप्य विश्वम्।
यामाहुः सर्वभूतप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नः तनुभिरवतु वः ताभिरष्टाभिरीशः॥'**

(अर्थात्, शिवजी उस जलके रूपमें हमें प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं जिसे ब्रह्माने सबसे पहले बनाया, उस अग्निके रूपमें दिखायी देते हैं जो विधिवत् दी हुई हवन-सामग्री ग्रहण करती है, उस होताके रूपमें दिखायी देते हैं जिसका कर्तव्य यज्ञ करना है, उस चन्द्र और सूर्यके रूपमें दिखायी देते हैं जो दिन और रातका समय निश्चित करते हैं, उस आकाशके रूपमें दिखायी देते हैं जिसका गुण शब्द है और जो संसार-भरमें रमा हुआ है, उस पृथ्वीके रूपमें दिखायी देते हैं जो सब बीजोंको उत्पन्न करनेवाली बतायी जाती है और उस वायुके रूपमें दिखायी देते हैं जिसके कारण समस्त जीव जी रहे हैं। **जल, अग्नि, होता, सूर्य, चन्द्र,**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

आकाश, पृथ्वी और वायुके इन आठ प्रत्यक्ष रूपोंमें जो भगवान् शिव सबको दिखायी देते हैं वे आपलोगोंका कल्याण करें।)

इस श्लोकके चौथे पादमें कालिदासने कहा है कि पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि पंचमहाभूत, सूर्य, चन्द्र, यज्ञका होता आदि अष्ट शरीरोंसे कल्याणकारी भगवान् सारे जगत्का पालन करते हैं। इस प्रकार उन्होंने शिवजीकी अष्ट मूर्तियोंका वर्णन करते हुए उपनिषद्-प्रतिपादित सिद्धान्तका विशेष निरूपण किया है। महाकवि कालिदासने ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके सम्बन्धमें जो-जो वर्णन किये हैं वे सब परब्रह्मके ही द्योतक हैं। क्योंकि तीनों मूर्तियोंका एकत्व इस पंक्तिसे स्पष्ट किया गया है, **'एकैव मूर्तिः बिभिदे त्रिधा सा'** अर्थात् एक ही मूर्तिने तीन रूप ग्रहण किये हैं। इस प्रकारके भगवान्के प्रत्यक्ष शरीरोंका वर्णन और विशेषरूपसे तेजोमय सूर्य-चन्द्रका उल्लेख करते हुए कालिदासने उपनिषद्-विहित निम्नलिखित सिद्धान्तका परिज्ञान पण्डितोंसे पामरतककी समस्त मानव जातिको कराया है; 'चेतन-अचेतनमय समस्त जगत् भगवान्का शरीररूपी है।' तेजःपुञ्ज सूर्य-चन्द्र भगवान्के नियमनके अधीन रहकर कर्मवश हो उदित एवं अस्त होते हैं। इस प्रकार कहते हुए कालिदासने शाकुन्तल नाटकमें ही अन्यत्र स्पष्टतः कहा है कि समस्त लोकका नियमन भगवान् करते हैं।

'यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीनां
आविष्कृतोऽरुणपुरस्सर एकतोऽर्कः।
तेजोद्वयस्य युगपत् व्यसनोदयाभ्यां
लोको नियम्यत इवात्मदशान्तरेषु॥'

(अर्थात्, एक ओर ओषधियोंके पति चन्द्रमा अस्ताचलको चले जा रहे हैं और दूसरी ओर अपने सारथि अरुणको आगे किये हुए सूर्य निकल रहे हैं। इन दो तेजस्वियोंके एक साथ उदय और अस्तको देखकर संसारको यही शिक्षा मिलती है कि **किसी शक्तिके द्वारा सारे जगत्का नियमन होता है और वह अपनी अन्यान्य दशाओंमें परिभ्रमित होता रहता है।)**

'लोको नियम्यते'—इस प्रकार कालिदासके कहनेका तात्पर्य यही है कि चेतन-अचेतनमय जगत् किसी शक्तिके द्वारा नियमित और धारित होकर सहजरूपसे चलता रहता है। समयके अनुसार सूर्य-चन्द्रका उदय और अस्त होनेका वर्णन करते समय यह स्पष्ट होता है कि कालिदासका ध्यान तैत्तिरीयोपनिषद्के इस वाक्यपर रहा है, **'भीषास्मात् वातः पवते, भीषोदेति सूर्यः, भीषा-**

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

स्मादग्निश्चेन्द्रश्च'। (अर्थात् इसी शक्तिके सङ्कल्पसे वायु गतिशील है, सूर्यका उदय होता है और अग्नि एवं इन्द्र भी इसीके अधीन हैं।) इसके अतिरिक्त कालिदासने विक्रमोर्वशीय नाटकके नान्दीश्लोकके चारों पादोंमें बादरायणके ब्रह्मसूत्रके चार अध्यायोंमें प्रतिपादित सिद्धान्तको ही सामासिक तथा संग्रथितरूपसे प्रस्तुत किया है।

'वेदान्तेषु यमाहुरेकपुरुषं व्याप्य स्थितं रोदसी
यस्मिन्नीश्वर इत्यनन्यविषयः शब्दो यथार्थाक्षरः।
अन्तर्यश्च मुमुक्षुभिः नियमितप्राणादिभिः मृग्यते
स स्थाणुः स्थिरभक्तियोगसुलभः निःश्रेयसायास्तु वः॥'

(अर्थात्, वेदान्ती लोग जिन्हें ऐसा अकेला पुरुष बताते हैं जो पृथ्वी और आकाशमें रमा हुआ होनेपर भी सबसे अलग बना रहता है, जिनका 'ईश्वर' नाम इतना सटीक और सच्चा है कि और किसीको भी इस नामसे नहीं पुकारा जा सकता और मोक्ष पानेकी इच्छा करनेवाले लोग जिन्हें प्राणायाम साधकर अपने हृदयके भीतर खोजते हैं वे सच्ची भक्तिसे मिलनेवाले भगवान् शिवजी आप सब लोगोंका कल्याण करें।)

इस श्लोकके पहले पादमें ब्रह्मसूत्रके प्रथम अध्यायके महत्त्वपूर्ण तत्त्वका निरूपण किया गया है। जगत्के कारणभूत परब्रह्म न तो प्रत्यक्ष ज्ञानसे और न अनुमानसे ही ज्ञातव्य हैं। वे ही वेदान्त द्वारा प्रतिपादित हैं। इस तत्त्वको **'वेदान्तेषु यमाहुरिति'** कहकर कालिदासने समझाया है। सांख्यदर्शन द्वारा प्रतिपादित प्रधानत्व-पदसे युक्त एवं अधिष्ठाताके पदसे अभिन्न न रहनेवाले सर्वव्यापक (व्याप्य स्थितं रोदसी) तथा सर्वज्ञता, सत्यसंकल्प आदिसे समन्वित परब्रह्मका वर्णन करते हुए कालिदासने यह कहा है कि वही पुरुष जगत्का कारण बन सकता है। नान्दीश्लोकके दूसरे पादमें पूर्वपादके तात्पर्यकी सशक्त अभिव्यञ्जना करते हुए वेदान्त-तत्त्वसे अभिन्न सिद्धान्तको समझाया गया है। सर्वनियामक एवं जगत्के आधारभूत परमपुरुषकी जितनी अभिधाएँ हैं उनमें 'ईश्वर' शब्दको सटीक व सच्चा कहकर और यह कहकर कि और कोई इस नामसे पुकारा नहीं जा सकता, कालिदासने वेदान्तियोंके ज्ञानमय तात्पर्य तथा शब्दके अभिधामूलक अर्थसे भिन्न अर्थका परिज्ञान कराया है। वेदान्त-ज्ञानियोंकी अर्थनिष्पत्ति सामान्यसे भिन्न होती ही है। लौकिक शब्द हो या वैदिक शब्द, वह परमात्मवाचक होकर विशिष्टार्थ-द्योतक होता है; अतः वह शब्द भी ब्रह्मका वाचक होकर सटीक हो जाता है। जिस शब्दके अक्षर यथार्थ होते हैं वह शब्द

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विशिष्ट-रूपसे परमात्माको लक्षित करता है—कालिदासने इस प्रकार सभी शब्दोंके अनन्तत्वको सिद्ध किया है। जब लौकिक लोग उस शब्दका प्रयोग करते हैं तब प्रधानभूत परमात्माके प्रत्यक्ष ज्ञान, अनुमान आदिसे अभिज्ञेय न होनेके कारण उसके वाच्यार्थमें ही अर्थ-समाप्तिको मानते हैं; किन्तु वेदान्तका श्रवण करनेपर ही उस व्याख्याकी पूर्ति हो सकती है। इस प्रकार कालिदासने व्युत्पत्ति-वैशिष्ट्यको समझाया है। **'सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति, सर्वे वेदा यत्रैकं भवन्ति, सर्वैश्च वेदैरहमेव वेद्यः'**, (अर्थात् समस्त वेद एक ही पदकी व्याख्या करते हैं, समस्त वेद एकार्थ-प्रतिपादक हैं, सभी वेदों द्वारा वेद्य मैं हूँ।) इत्यादि श्रुतिप्रतिपादित सिद्धान्तोंको ही कालिदासने सामासिक रूपसे **'ईश्वरत्वादेव अनन्यविषयः सर्वोऽपि शब्दः यथार्थाक्षरः'** (अर्थात् ईश्वरत्वके अर्थसे अभिन्न होकर रहनेवाले समस्त शब्द यथार्थाक्षर होते हैं) द्वारा निरूपित किया है।

उक्त नान्दीश्लोकके तीसरे पादमें ब्रह्मसूत्रकी साधन-व्याख्या करनेवाले तृतीय अध्यायके तत्त्वकी व्याख्या करते हुए दहरविद्या अर्थात् योगविद्याका उल्लेख किया गया है। दहरविद्याके बारेमें कहा गया है, **'अथ यदिद दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोस्मिन्नन्तर आकाशः, तस्मिन् यदन्तः तदन्वेष्टव्यं, तदेव विजिज्ञासितव्यम्'** (अर्थात् यह कुण्ड कमलरूपी है, यही आकाश है, इसमें चरम तत्त्वकी खोज की जानी चाहिए, वही ज्ञातव्य है।) **'मुमुक्षुभिः अन्तः यो मृग्यते'** (अर्थात् मुमुक्षुओंसे अपने भीतर जिसकी खोज की जाती है) कहकर कालिदासने दहरविद्याकी ओर ही संकेत किया है। कालिदासने आगे **'स्थिरभक्तियोगसुलभः'**का प्रतिपादन करते हुए भगवान्के स्वरूप, गुण, विभव आदिके प्रति अविच्छिन्नरूपसे तैलधाराकी भाँति बरसायी जानेवाली प्रेममयी भक्तिको व्याख्या 'भक्तियोग' शब्दसे की है।

श्लोकके चतुर्थ पादके अन्तमें **'निःश्रेयसायास्तु वः'** (आप सबका कल्याण करें) कहकर कालिदासने ब्रह्मसूत्रके चतुर्थ अध्यायके तत्त्वका निरूपण किया है। निश्चित श्रेय निश्रेयस् है, अर्जुनने गीताचार्य भगवान् कृष्णसे पूछा, **'यच्छ्रेयस्स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे'** (कृपया यह बतलाइये कि निश्चित श्रेयस् क्या होता है।) कालिदासने इस सन्दर्भमें इसी बातकी व्याख्या की है। फिर निश्रेयस क्या है? इस प्रश्नका समाधान शाकुन्तलके अन्तमें भरतवाक्य **'पुनर्भवं क्षपयतु नीललोहितः'** (महादेवजी ! ऐसी कृपा करें कि मुझे अब पुनः जन्म न लेना पड़े) द्वारा कालिदासने प्रस्तुत किया है, 'पुनर्जन्मका नाश ही निश्रेयस है'। ब्रह्मसूत्रके अन्तिम अध्यायके अन्तिम सूत्रमें कहा गया है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'अनावृत्तिश्शब्दादनावृत्तिश्शब्दात्' (आवृत्ति न हो, आवृत्ति न हो)। इसके द्वारा संकेतित अपुनर्भव (पुनर्जन्म-विहीनता) रूप निश्रेयसके प्रति इङ्गित करते हुए ही कालिदासने **'निःश्रेयसायास्तु वः'** घोषित किया है।

इस प्रकार कालिदासने उपनिषद्-प्रतिपादित समस्त सिद्धान्तोंको स्वीकार-कर उपनिषद्-वाक्यों द्वारा निरूपित परस्पर-विरुद्धसे प्रतीत होनेवाले तत्त्वोंमें समानताका प्रतिपादन और बोधायन आदि ज्ञानाचार्योंके तत्त्व-ज्ञानका निरूपण करते हुए इस तत्वको अभिवर्णित किया हैं कि समस्त जगत् भगवान्का शरीर-रूपी है; जगत्का भरण करनेवाले भगवान्का शरीरमय है सारा विश्व; वह समस्त शब्दोंसे अभिज्ञेय है; चेतनाचेतनात्मक जगत् उसके आराधन-निमित्त हैं और उसका नियमन तथा धारण वही करता है। चूँकि इस विश्वके समस्त पदार्थ चाहे वे चेतन हों या अचेतन, भगवान्के शरीररूपी हैं, अतः उनके प्रति द्वेष-भाव रखना अनुचित है; समस्त जगत्के भगवत्-शरीर-रूपी होनेके कारण सबको सबके प्रति अनुकूल भाव रखना चाहिए। यदि कोई किसीके प्रति द्वेषभाव रखे, किसीको पराभूत करे या किसीका अपहरण करे तो यही माना जायगा कि सर्व-शरीरी भगवान्के प्रति द्वेष किया गया, उसे पराभूत किया गया और उसका अपहरण किया गया। भगवान्के क्रुद्ध होनेपर आसुरी योनियोंमें कठोर जन्म होगा। चाहे कण्ठमें पुष्पमाला धारण की जाय अथवा कञ्चुकके ऊपर, कञ्चुकधारी चेतनका ही सौन्दर्य-विकास होता है। उसी प्रकार भगवान्के शरीर-भूत जगत्के प्रति यदि चेतन-वर्ग द्वेष, असूया आदिका आचरण करे तो अन्ततः उसे सर्वजगत्-शरीरी भगवान्की अप्रीतिका पात्र होना पड़ेगा। इसी आशयसे महाकवि कालिदासने भगवान्की अनुकम्पाकी प्राप्ति तथा लोक-कल्याणके निमित्त विश्वमें परस्पर हितैषिताकी अवश्यकताकी परिकल्पना करते हुए नान्दीत्रय द्वारा सिद्धान्त-निरूपण किया है।

कवि तथा वेदान्ती कालिदासने यह प्रतिपादित करते हुए कि समस्त जगत्के ईश्वर-विषयक होनेके कारण केवल ईश्वरवाची समस्त शब्द यथार्थाक्षर होते हैं, सर्वजगत्-व्यापी परम तत्त्व भगवान्का आख्यान प्रस्तुत किया है। भगवान् सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी हैं; अतः जगत्की समस्त वस्तुओंमें नितराम् समानता है। चूँकि समस्त देवताओंके वाचक शब्दों द्वारा परमात्माका ही द्योतन होता है अतः वेदोक्त कर्मोंका अनुष्ठान करनेपर यही सिद्ध होता है कि वही एक भगवान् समस्त कर्मोंका आराध्य है और वही समस्त फलोंका प्रदाता है। रघुवंशके दशम सर्गके विष्णु-वर्णन-प्रसङ्गमें इसी तत्त्वका विस्तारसे निरूपण किया गया है। (शेष पृष्ठ २१८ पर)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महामहोपाध्याय श्रीहाराणचन्द्र भट्टाचार्य

बंगाल प्रान्तका राजशाही जिला। ग्रामका नाम था—वालुभरा। चक्रवर्ती श्रीप्रसन्नचन्द्र भट्टाचार्यके सात पुत्रोंमें-से तीसरे थे श्रीहाराणचन्द्रजी। पन्द्रह दिसम्बर, १८८९ ई० सन्में इनका जन्म हुआ। आठ वर्षकी अवस्थामें यज्ञोपवीत-संस्कार हो गया था।

जब ये दस वर्षके हुए, झोपड़ीमें आग लग गयी। माता, पिता, भाई, वहन और जिस शिशुका उन्हीं दिनों जन्म हुआ था, वे सब जल मरे। इनके साथ वच गया इनका छोटा भाई कालीकिंकर चक्रवर्ती। ग्रामवासियोंकी सहायतासे अन्त्येष्टि-क्रिया सम्पन्न हुई। दोनों भाई मामाके घर गये। थोड़े ही दिनोंमें वहाँ उन्हें ऐसा लगा कि ये लोग हमें अपने सिरपर भार समझते हैं, दोनों भाई चुपकेसे तीन वजे रातको घरसे निकल पड़े, पैदल अज्ञात मार्गसे। न आसन, न वसन, न धन, न जन, न उपकरण, केवल ईश्वरका विश्वास उनके साथ था। भूख-प्याससे गला सूख रहा था। थकानके कारण पाँव नहीं उठते थे। आठ वर्षका छोटा भाई व्याकुल हो गया। मुसलमानोंकी वस्तीमें एक चवूतरेपर वैठ गये। कालीकिंकर वेसुध हो गया। सज्जन यवनने कुछ खाने-पीनेका अनुरोध किया। इनकी दशा देखकर और वृत्तान्त सुनकर उसका चित्त दयासे द्रवित था। परन्तु दस वर्षकी अवस्थामें ही इनकी आचार-निष्ठा ऐसी पक्की थी कि अपने हाथोंसे पका करके भी इन्होंने भोजन करना स्वीकार नहीं किया। गोशालामें गोवरसे लीपकर सामग्री इकट्ठी करके, स्नान करके तव दूध-भात स्वयं पकाया और दोनों भाइयोंने भोजन किया। निष्ठामें ही सम्पूर्ण शक्तिका निवास है, जो जीवनमें आगे चलकर विकास और प्रकाशके रूपमें अभिव्यक्त होती है।

वहाँसे तीस-चालीस कोसका मार्ग पार करके ये शरद्चन्द्रके घर पहुँचे। वे इनके पिताके यजमान और वंगालके न्यायाधीश थे। जजके घरमें कोई कर्मकाण्डका प्रसंग था। विद्वानोंको दक्षिणा मिली। श्रीहाराणचन्द्रको केवल दो रुपये मिले। इन्होंने न्यायाधीशको दक्षिणा लौटा दी और कह दिया—'जब मैं विद्वान् होकर लौटूँगा तव तुम्हारे घरसे दक्षिणा लूँगा।' दस

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वर्षके बालकमें आत्मसम्मानका इतना ऊँचा भाव और तेजस्विता देखकर यजमान न्यायाधीशकी बुद्धिमें इनके उज्ज्वल भविष्यकी कल्पना हो गयी। उसने महामहोपाध्याय प्रातःस्मरणीय श्रीशिवकुमार शास्त्रीके पास इन्हें भेज दिया। शास्त्रीजी बालककी आकृति, भाषण, मेधा, धारणशक्ति और निपुणता देखकर पहचान गये कि इसका भविष्य महान् है। उन्होंने न केवल शास्त्रोंका अध्ययन कराया, प्रत्युत इस बालकको भोजन-आच्छादनकी चिन्तासे भी मुक्त कर दिया। कुछ ही वर्षोंमें इनका वैदुष्य चमक गया। शास्त्रार्थोंमें इनका प्रतिभट मिलना कठिन था। बड़े-बड़े विद्वान् इनका लोहा मानते थे और इनकी कल्पना-शक्ति देखकर चकित रह जाते थे। लोग एक ओर इनकी गुरुसेवा और गुरुनिष्ठाकी प्रशंसा करते थे तो दूसरी ओर शास्त्रीजीके वात्सल्यकी। इन्होंने शास्त्रीजीको ही अपना इष्टदेव शिव माना। अपने सम्मुख उन्हींका चित्रपट रखते। अध्ययन-अध्यापन और शयन-भोजनमें भी उन्हींका दर्शन चाहते थे।

अनेक बड़े-बड़े विद्यालयोंमें इन्होंने अध्यापन किया। इनसे अन्याय सहन नहीं होता था। विद्यालयमें कुछ भी अनुचित होनेपर उसका परित्याग कर देते थे। इन्होंने 'कालसिद्धान्तदर्शनी' नामकी एक पुस्तक लिखी है जिसमें काल सम्बन्धी पचाससे अधिक सिद्धान्तोंका ऊहापोह किया गया है।

सन् १९३२ ई०में श्रीमन्माध्व-सम्प्रदायाचार्य स्वामी श्रीसत्यध्यानतीर्थजी महाराज काशीमें पधारे। उन्होंने 'अद्वैतमतविमर्श' नामकी एक पुस्तक लोगोंमें बाँटी और उसके द्वारा श्रीशङ्कराचार्य, अद्वैत-सिद्धान्त तथा संन्यासियोंके सम्बन्धमें अश्रद्धा उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया। श्रीहाराणचन्द्र भट्टाचार्यसे उनकी यह चेष्टा सहन नहीं हुई और उन्होंने अपने सत्य-सिद्धान्तकी रक्षाके लिए तथा उक्त पुस्तकके खण्डनके लिए एक पुस्तक 'अद्वैतमतविमर्श-खण्डन' लिखकर दो भागोंमें प्रकाशित करवायी। उसे लोगोंमें विनामूल्य वितरित किया। साथ ही, उन्होंने यह घोषणा कर दी—'यदि सत्यध्यानतीर्थजी अपने कथनको प्रमाणित कर देंगे तो मैं उन्हें एक सहस्र मुद्रा परितोषिक दूँगा और माध्वमत स्वीकार कर लूँगा।' इससे जनताको अत्यन्त सन्तोष हुआ और स्वामी श्रीसत्यध्यानतीर्थजीने तूष्णींभाव धारण कर लिया।

हम केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि बाल्यावस्थामें जो अनाथ था, निराश्रय था, जिसके पास भोजनके लिए अन्न और पहननेके लिए वस्त्र नहीं था, वह व्यक्ति भी अपने उत्साह,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लगन, अध्यवसाय, अध्ययन, सदाचार एवं गुरुनिष्ठाके द्वारा इतने ऊँचे पद-पर पहुँच गया। किसी भी अवस्थामें अपनेको निराश नहीं करना चाहिए।

सन् १९४२ में इन्हें महामहोपाध्यायकी पदवी प्राप्त हुई थी। सन् १९४३ में इनका कैलासवास हुआ।

यदि मनुष्यके जीवनमें पौरुष, उत्साह, निष्ठा, सहिष्णुता, गुरुभक्ति और न्यायपरायणता हो तो वह अनाथ-अवस्थामें जन्म लेकर भी ऊँचे-से-ऊँचे पदपर पहुँच सकता है। मनुष्यकी उन्नतिमें परिस्थितियाँ नहीं, उसकी मानसिक दुर्बलताएँ ही बाधक हैं। पौरुषपरायण व्यक्तिकी ईश्वर सहायता करता है, अकर्मण्य और आलसीकी नहीं।

(पृष्ठ २१५ का शेषांश)

यदि सारा जगत् इस तत्त्वको हृदयंगम कर ले कि समस्त जगत् सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी भगवान्‌का शरीरस्वरूपी है और सारा चेतन-अचेतन-वर्ग उसकी आराधनाके लिए उसीका अवयवभूत है तो जगत्‌में-से द्वेष, असूया आदि छः प्रकारके विकार-रूपी शत्रुओंका तत्काल नाश हो जायेगा। यदि सारा जगत् परस्पर हितकी कामना करते हुए परस्पर मैत्री भाव रखे और एक दूसरेके हितका सम्पादनकर सन्तोषमय वातावरणका निर्माण करे तो **'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'** (समस्त जगत् ब्रह्म है।) कहकर श्रुतियों द्वारा घोषित किया जानेवाला परम पुरुष भगवान् प्रसन्न होंगे और समस्त जगत्‌को वे अपुनर्भवरूपी भव्य वर-प्रसाद प्रदान करेंगे।

धन्य हैं कवि-वेदान्ती कालिदास जिन्होंने इन समस्त तत्त्वोंको उक्त तीनों नान्दीश्लोकोंसे निरूपित करते हुए विश्वमङ्गलके उद्देश्यसे तीनों नाटकोंकी रचना की है, जिनकी कामना विश्व-कल्याणमात्र है और जिन्होंने परम-पुरुष भगवान्‌की सर्वश्रेष्ठताकी प्रतिष्ठा तथा जगत्‌की सत्यताकी सार्थक अभिव्यक्ति की है।

'कालिदासो जगत्सर्वं शरीरं ब्रह्मणो वदन्।
नाटकत्रयनान्दीभिः व्याख्यत्त्रय्यंतसारवित्॥'

[अनुवाद : डॉ० पी० जयरामन, बम्बई]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मेरा अनुभव, विश्वास और आशा

पूज्य श्री……

सादर प्रमाण !

वर्षोंसे मैं अपने भावको व्यक्त होनेसे रोक रही थी कि मैं कौन जो आपके 'सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट'के बारेमें अभिप्राय दूँ ? परन्तु आजतकके प्रकाशित साहित्यका मैंने अखण्डरूपसे जो एक-सा अनुभव किया है वह बरबस शब्दोंमें फूट पड़ना चाहता है और मैं अपने सन्तोषके लिए यह पत्र लिख रही हूँ।

मैंने हमारे परम पूज्य श्रीस्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजीकी 'माण्डूक्य-प्रवचन' पुस्तक सर्वप्रथम पढ़ी थी। मेरे लिए वह पुस्तक न थी, मानो उसके रूपमें मुझे मेरा कोई अन्तरङ्ग मित्र मिल गया ! हमारे मन, बुद्धि और आत्माके सूक्ष्मातिसूक्ष्म रहस्योंका अत्यन्त सरल और स्पष्ट भाषा-शैलीमें जैसा उद्घाटन हुआ है, अन्यत्र कहीं खोजनेपर भी नहीं मिलेगा। मुझे तो इसे पढ़ते समय लगा मानो स्वयं सद्गुरुकी उपलब्धि हो गयी है; यह पुस्तक नहीं रही प्रत्यक्ष सद्गुरुका श्रवण कर रही हूँ।

इसी प्रकारका अनुभव महाराजश्रीकी प्रत्येक पुस्तकसे मैं आजतक करती आयी हूँ। कभी-कभी भगवद्-प्रेमके प्रसंग हमारे हृदयके अत्यन्त कोमल अंशको इस तरह छू जाते हैं कि हम कभी अश्रु-धारामें डूब जाते हैं तो कभी स्निग्धता और शीतलतामें नहाके स्वच्छ और पवित्र हो जाते हैं। आपकी मधुर वाणी मानो हमारे हृदय-पर अभिषेक करनेवाली अमृतधारा मालूम होती है तो कभी अज्ञात-रूपसे संचित भगवद्-विरहाग्निको उद्दीप्त करके हमें अत्यन्त व्याकुल और विवश बना देती है। परन्तु हर हालतमें परम शान्तिका अनुभव मिलता है। मानो जन्म-जन्मका बिछुड़ा हुआ परम प्रियतम मिल गया और महाराजश्री हमारे हृदयसे इतने अभिन्न हो जाते हैं कि हम अपने हृदयसे ही बातचीत करते मालूम होते हैं। तब त्रिपुटीका—लेखक, पाठक और रचनाका—विलय हो जाता है, मात्र हम हृदयरूप होकर रह जाते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ज्ञानका प्रकाश, प्रेमका आनन्द तथा अद्वैतकी अनुभूति प्राप्त होती है।

महाराजश्रीकी अलौकिक दिव्य वाणीने हमारे सम्पूर्ण हृदयको जीत लिया है। आपसे दूर रहनेपर तो इन पुस्तकोंसे हमें नित्य और अखण्ड-रूपसे आनन्द प्रदान करनेवाला अविच्छिन्न संयोग प्राप्त हो जाता है और जीवनका प्रत्येक क्षण, हमारी प्रत्येक क्रिया आपसे संचालित मालूम पड़ती है। चिन्ताओं और समस्याओंमें उलझे हुएके लिए तो मानो आप अन्धेकी लकड़ीके समान शब्दावतार-रूपमें मार्गदर्शक और उद्धारक होकर मिले हैं।

वास्तवमें पूर्णरूपसे अपनी अनुभूतिको शब्दोंमें प्रकट करनेमें असमर्थ हूँ। प्रारम्भसे जिस अवर्णनीय-सुखद अनुभूतिको मैंने पाया है, वह उत्तरोत्तर गाढ़ होती जाती है। ऐसे अति उत्तम साहित्यकी और उसके महान् प्रणेताकी सेवाका सौभाग्य किसी-किसी कृपापात्रको ही मिलता है जिनमें आपका स्थान प्रथम है और यह बड़े आनन्दकी बात है। मुझे पूरा विश्वास और आशा है कि आपका ट्रस्ट इसी प्रकार हमेशा सत्साहित्य-प्रकाशन द्वारा जनता-जनार्दनकी अनवरत और सप्रेम सेवा करता रहेगा।

[डा० श्रीमती] उर्वशी ज० सूरती
एम. ए. पी. एच-डी.

शीतल प्रकाश

नई दिल्ली, १८ नव० (यु० न्यू०)। एक अमरिकी फर्मने एक ऐसा लैम्प तैयार किया है जो ठण्डा प्रकाश देता है। इस लैम्पमें प्रकाश-स्रोत पंखेसे ठण्डा किया जाता है और प्रकाश-बिन्दुको घना करने तथा किरणोंको इधर-उधर बिखेरनेके लिए बत्तीके इर्द-गिर्द कई लैन्स लगे होते हैं। बत्तीके रूपमें एक आप्टीकल छड़ लगी होती है जो ५ इंचके घेरेमें ठण्डा प्रकाश छोड़ती है।

यह नया लैम्प माइडो इलेक्ट्रानिक्स परीक्षणोंमें अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होगा जहाँ सफेद प्रकाशमें तापवृद्धिसे रासायनिक परिवर्तन सम्भव है।

नई दिल्ली, १८ नव० (यु० न्यू०)। ब्रिटेनके शाही विमान कारखानेमें एक ऐसा घूमनेवाला कैमरा तैयार किया गया है जो २५ हजारसे २॥ लाख चित्र प्रति सेकण्डकी गतिसे १६ मिलोमीटर फिल्मके एक साथ २४० चित्र ले सकता है।

ज्यों-ज्यों कैमरेका तिरछाकार दर्पण घूमेगा, एक-एक चित्र प्रकाशित होता जायगा।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

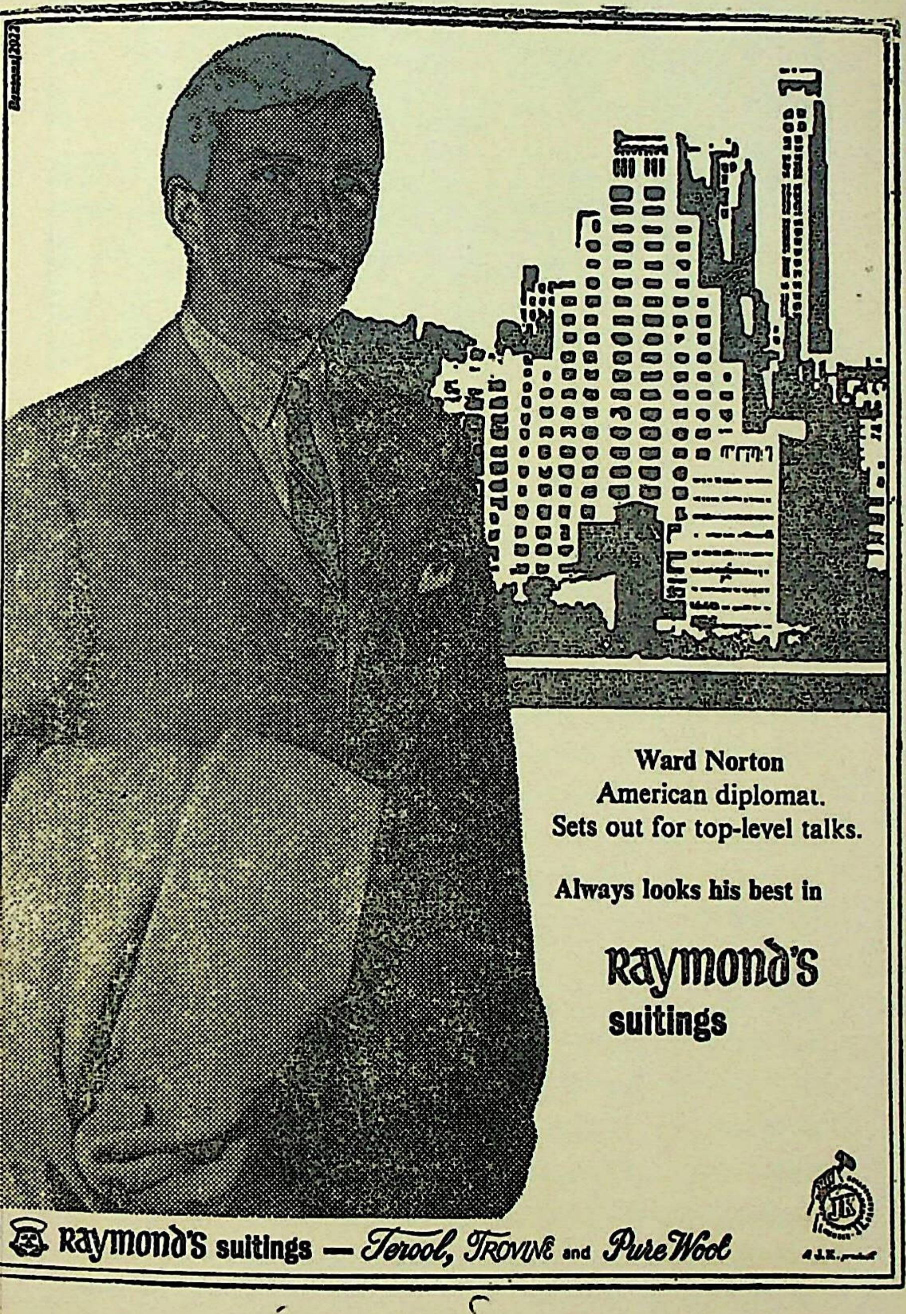

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पण्डित श्री रामनारायण त्रिपाठी

व्याकरण-वेदान्त-धर्मशास्त्राचार्य

संस्कृत-विभाग (प्राच्य), लखनऊ विश्वविद्यालय

प्रायः सभी वादि-प्रतिवादी सामान्यरूपसे स्मृतिकी सत्ता एवं उपयोगिता स्वीकार करते हैं परन्तु वह प्रमा है या प्रमाण है अर्थात् यथार्थ अनुभूति अथवा उसका करण है ? इस विषयमें बहुत मतभेद रखते हैं। सांख्य, बौद्ध, शैव, योग, वेदान्त, मीमांसा आदि दर्शनोंके विद्वान् स्मृतिको प्रमारूप और उसके करणको प्रमाणरूप अंगीकार नहीं करते। इनमें कुछ नैयायिक और वेदान्ती स्मृतिको प्रमा तो मानते हैं, प्रमाण नहीं। जैन और माध्व एकमतसे स्मृतिको प्रमाण मानते हैं। इन मतभेदोंके कारण होनेवाले संशयकी निवृत्ति एवं जिज्ञासाकी पूर्तिके लिए विचारकोंके स्मृति-सम्बन्धी विविध मतोंका उल्लेख करके उनकी समीक्षा की जाती है।

उससे भी पहले यह निवेदन करना उचित है कि भिन्न-भिन्न शास्त्र एवं सम्प्रदायोंके अनुसार स्मृतिके विषयमें चाहे कुछ भी मान्यता हो; लोक-व्यवहारमें प्रत्यक्ष अनुभव और प्रत्यक्ष प्रमाण आदिके समान ही स्मृतिके द्वारा भी कार्य-संचालन होता है। लोग अपनी स्मृतिको भी प्रमाणरूपसे उपस्थित करते हैं। यथार्थ स्मृतिकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें लोगोंको कुछ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भी सन्देह नहीं होता, अन्यथा स्मृति-मूलक व्यवहारका लोप ही हो जाता। कहना यह है कि लोक-व्यवहारका विचार करनेपर यही सिद्ध होता है कि स्मृतिको प्रमा और प्रमाणरूप मानना उचित है। लोकमें वही सत्य कहा जाता है जिससे लोक-व्यवहार ठीक-ठीक चले। जहाँ लोक-प्रवृत्ति सफल है, वहाँ वस्तुकी उपयोगिता भी है। 'यह वही घड़ा है', 'वही घोड़ा है', 'वही पुस्तक है'—इन स्मृतियोंके द्वारा भलीभाँति व्यवहार सम्पन्न होता है। व्यवहारमें निर्विवाद रूपसे स्मृतिकी उपयोगिता है और वह प्रत्यक्ष-अनुमानादिकी अपेक्षा किसी प्रकार कम नहीं है। ऐसी स्थितिमें यदि स्मृतिको प्रमा कहा जाय और अनुभवादिको उसका करण = प्रमाण कहा जाय तो किसी मतवादीकी कोई हानि नहीं है। इतना अवश्य है कि न माननेवालोंके अपने-अपने सम्प्रदायकी मर्यादाका अतिक्रमण होता है। यदि ऐसी शंका की जाय कि सभी स्मृतियाँ यथार्थ नहीं होतीं, कुछ अयथार्थ भी होती हैं तो ऐसा कहना ठीक है परन्तु हम अयथार्थ स्मृतिको स्मृत्याभास कहते हैं। अयथार्थका प्रत्यक्ष भी प्रत्यक्षाभास ही होता है जैसे, चन्द्रमाका प्रादेश-मात्रत्व। जैसे प्रत्यक्षाभास प्रमाण नहीं है, वैसे स्मृत्याभास भी प्रमाण नहीं है।

आचार्योंने अपने-अपने मतके अनुसार प्रमा और प्रमाणके ऐसे लक्षण बना दिये हैं और नियमपूर्वक प्रमाणोंकी संख्याका इतना दृढ़ निश्चय कर दिया है कि उनकी परिधिमें स्मृतिके लिए अवकाश नहीं है। फिर भी, क्या आश्चर्य है कि वे उसके प्रमात्वका तो खण्डन करते हैं परन्तु उसकी सत्ता और उपयोगिताको अंगीकार करते हैं! यह निश्चयरूपसे कहा जा सकता है कि स्मृतिको प्रमा-रूप स्वीकार न करनेमें प्रधानतया उनकी सम्प्रदाय-परम्परा ही कारण है। फिर भी, यह प्रश्न तो बना ही रहता है कि ऐसी परम्पराका भी कोई कारण है क्या? इस परम्पराके अतिरिक्त भी कोई कारण हो सकता है या नहीं? इसका उत्तर यह है कि वस्तुतः धर्मशास्त्रका इतिहास ही ऐसा रहा है।

वैदिक परम्पराकी यह मान्यता रही है कि धर्म-निर्णयके सम्बन्धमें श्रुतियाँ मुख्य प्रमाण हैं और स्मृतियाँ गौण। श्रुतिमूलक होनेपर ही स्मृतियाँ प्रमाण हैं उनका स्वतन्त्र प्रामाण्य नहीं है। मीमांसक समाजमें यही परम्परा चिरकालतक चलती रही और उनकी वासनामें ऐसी समा गयी कि वह स्मृति-रूप ज्ञानपर भी छा गयी। इस नियमको ठोस कर दिया कि स्मृतिज्ञान स्वतन्त्र प्रमाण नहीं है; प्रत्युत स्मृतिके कारण अनुभवके अधीन ही प्रमाण है। इसीसे स्मृतिकी गणना मुख्य प्रमाणोंमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं की गयी। वैदिक दर्शनोंपर अप्रतिहत-रूपसे इस नियमका प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। बौद्धोंने भी इसी पथका आश्रय लिया। केवल जैन ही इस बन्धनसे मुक्त रहे। इस सम्बन्धमें मेरी एक प्रार्थना है। इतिहासमें ऐसा देखा गया है कि प्रमाणोंकी संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी है—शब्द, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि, ऐतिह्य, सम्भव, चेष्टा, प्रतिमा आदि। एक मतके आचार्यने अपनेसे भिन्न मतका खण्डन किया है। परन्तु इस संख्या-वृद्धिसे व्यवहारमें सरलता ही हुई है, कोई कठिनता उत्पन्न नहीं हुई। किसमें किसका अन्तर्भाव करना है?—इस शास्त्रार्थ या विवादकी कोई आवश्यकता नहीं है, स्मृतिको प्रमाण मान लेनेसे एक व्यवहार-संगत सरलता ही उत्पन्न होती है। आप स्वतन्त्र विचारक हैं। अपने पक्षका आग्रह छोड़कर देखिए। इसके लिए विविध शास्त्रीय प्रक्रिया आपके सम्मुख उपस्थित करके मैं स्मृतिकी प्रमाणरूपताका समर्थन करता हूँ।

न्याय-वैशेषिकमें स्मृति

इनके मतमें द्रव्यादि सात पदार्थोंमें एक 'गुण' भी है। गुणोंमें एक बुद्धि है जो आत्माके आश्रित रहती है। केवल मनका ही विषय होती है और उसीका एक नाम ज्ञान भी है। बुद्धिके

> श्री उड़ियाबाबाजी महाराजसे किसी भक्तने प्रश्न किया—'महाराज! सिद्धि क्या है?' उन्होंने कहा—'बरदाश्त करना ही सबसे बड़ी सिद्धि है।'

दो भेद हैं— १. अनुभूति, २. स्मृति। स्मृति भी आत्म-धर्म ही है; क्योंकि आत्मा ही ज्ञाता है। स्मृति बुद्धि-धर्म नहीं है; क्योंकि स्मृति अथवा स्मरण भी ज्ञान-विशेष ही है। इसलिए उसका ज्ञानका धर्म होना संभव नहीं है। निरात्मिका बुद्धि स्वयं धर्म है, धर्मका आश्रय नहीं होती। स्मृति भावना अर्थात् संस्कारसे उत्पन्न होती है। वह संस्कार अनुभवसे पैदा होता है। संस्कार ऐसे निश्चयसे जन्म लेता है जिसकी उपेक्षा न की जा सकती हो। उपेक्षात्मक ज्ञानसे संस्कारकी उत्पत्ति नहीं होती—यह अनुभव-सिद्ध है। जैसा कि कहा गया, संस्कार ही जाग्रत् होकर अनुभवकर्ताके हृदयमें स्मृति उत्पन्न करता है। आत्मा और मनका सन्निकर्ष होनेपर प्रणिधानादिसे, उन्मादादिसे और अनुभूतको उद्‌बुद्ध करनेवाली सामग्रीसे संस्कारका जागरण होता है। वैशेषिक दर्शन (९।२।६७) में तथा प्रशस्तपाद-भाष्यमें इसका स्पष्टीकरण मिलता है।

अनुभूति दो प्रकारकी होती हैं— १. यथार्थ २. अयथार्थ। पहली प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द—इन

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

चार प्रकारके प्रमाणोंसे प्रमाके रूपमें उत्पन्न होती है। प्रमा अर्थात् यथार्थानुभूति। दूसरी अनुभूतिको अप्रमा कहते हैं, अयथार्थ अनुभूति। इसको कहीं संशय, विपर्यय और तर्कके नामसे तीन प्रकारकी और कहीं संशय एवं विपर्ययके नामसे दो प्रकारकी मानते हैं। स्मृति भी यथार्थ और अयथार्थ—दो प्रकारकी होती है। पहली संस्कार-प्रमासे उदित होती है। कहनेका अभिप्राय यह है कि लौकिक-अलौकिक सान्निध्य, परामर्श, सादृश्य, योग्यता आदि सामग्रियोंसे उद्भूत प्रमाजन्य संस्कारके जागरणसे जो स्मृति पैदा होती है, वह यथार्थ होती है। दूसरी, संस्कार द्वारा अप्रमा अर्थात् भ्रम-ज्ञानसे उत्पन्न होती है। आशय यह है कि पित्तकी वृद्धि, दूर देशस्थता, अन्धकार, इन्द्रिय-विकलता, मनकी अस्थिरता, मेढ़ककी चर्बी एवं अंजनादि दोष सामग्रीसे समुद्भूत अप्रमामूलक संस्कारसे जिस स्मृतिका उदय होता है, वह अयथार्थ होती है। दोनों प्रकारकी ही स्मृतियाँ संस्कारसे ही उत्पन्न होती हैं। परन्तु एक संस्कार यथार्थ अनुभवका होता है और दूसरा भ्रमका। प्रमा और भ्रम-दोनोंसे संस्कारकी उत्पत्ति और संस्कारसे स्मृति होती है। जाग्रत्-दशामें दोनों प्रकारकी ही स्मृतियाँ हो सकती हैं। परन्तु स्वप्नावस्थामें जो कुछ मालूम पड़ता है, वह स्मरणात्मक अयथार्थ ही है। किसी-किसीका मत है कि स्वप्नज्ञान केवल मानसिक है, स्मरणात्मक नहीं है। स्वप्नके बाद उसका स्मरण होता है। किसी-किसीका यह भी मत है कि स्मृतिसे भी संस्कार उत्पन्न होते हैं जिनसे उत्तरोत्तर स्मरण होते हैं।

स्मृतिका जनक कौन है?—इसके सम्बन्धमें भी मतभेद है। स्मृति और संस्कार अनुभवसे पैदा होते हैं कि ज्ञानसे? प्राचीन नैयायिकोंका मत है कि अनुभव ही उनका कारण है; नवीन नैयायिकोंका मत है कि ज्ञान। दोनों ही अनुभवको अनुभवत्वेन और ज्ञानको ज्ञानत्वेन संस्कार तथा स्मृतिका कारण मानते हैं। जितने-जितने अनुभव और जितने-जितने ज्ञान होते हैं, उनके उतने-उतने संस्कार और स्मृतियाँ होती हैं। यही कारण है कि स्मृतियाँ अनेक होती हैं और वे अलग-अलग होती हैं। 'मैं स्मरण कर रहा हूँ'—यह प्रतीति होती है, स्मृति पदका अर्थ पृथक् होता है, इसलिए कोई-कोई विद्वान् प्रत्यक्ष और अनुमानके आधारपर स्मृतित्वको जाति स्वीकार करते हैं। ठीक भी है, अनुभवत्व और ज्ञानत्वके समान ही स्मृतित्व भी एक जाति है। स्मृतिमें पूर्वानुभव समवायी कारण (नित्य सम्बद्ध) है। आत्म-मनका संयोग असमवायी कारण है। प्रणिधानादि निमित्त कारण हैं। संस्कार व्यापार है; क्योंकि सब हेतु एक साथ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उदय नहीं हो सकते, इसलिए एक साथ अनेक स्मृतियाँ भी नहीं हो सकती।

नैयायिकोंमें स्मृतिके प्रमारूप होनेमें दो मत हैं—कोई उसे प्रमा मानते हैं और कोई अप्रमा। आचार्य वाचस्पति मिश्र 'न्यायवार्तिक-तात्पर्य' में स्मृति-भिन्न ज्ञानको ही प्रमा स्वीकार करके लोक-व्यवहारके विरुद्ध होनेके कारण स्मृतिके प्रमात्वका

हैं। जिसका यथार्थ अनुभवसे योग-व्यवच्छेद न हो अर्थात् समवाय-सम्बन्ध बना रहे, उसको 'प्रमा' कहते हैं (४।५)।

प्रामाणिक पुरुषोंका कहना है कि यथार्थ अनुभव ही प्रमा है। वह अपरिवर्तित ज्ञान है। प्रश्न यह है कि स्मृतिको प्रमा न माननेका क्या कारण है? क्योंकि वह भी यथार्थ ज्ञान ही तो है, जैसे प्रत्यक्षादिकी अनुभूति होती

उनका स्नेह

उसी वर्ष मैंने दण्ड ग्रहण किया था। प्रथम चातुर्मास कर्णवासमें हो रहा था। एक दिन एकाएक मेरा स्वास्थ्य बिगड़ गया। शौच-लघुशंकाके लिए उठनेका भी सामर्थ्य न रहा। मुझे स्मरण है कि रातभर श्रीउड़ियाबाबाजी महाराज मेरे चारों ओर घूमते रहे। मैं बोल नहीं सकता था, परन्तु समझता सब था। जब कोई कहता कि 'महाराज जी, आप विश्राम करो' तो उसे डाँट देते और कहते—'यह मेरा हीरा है हीरा, इसकी रक्षा तो होनी ही चाहिए'।

ऐसे असंग और जीवनमुक्त महापुरुषके हृदयका स्नेह, वात्सल्य स्मरण करके हृदय गद्गद हो जाता है। म० श्री०

खण्डन करते हैं। उनका कहना है कि 'प्रमा' शब्दका अर्थ है—अर्थसे नित्य-युक्त उपलब्धि। स्मृतिमें प्रमारूपता नहीं है।

श्रीउदयनाचार्यने न्याय-कुसुमाञ्जलिमें कहा है कि यथार्थ अनुभव निरपेक्ष रूपसे मान है। (४।१)। 'मिति' शब्दका अर्थ है—एकको दूसरोंसे ठीक-ठीक अलग करके जानना। जाननेवालेको प्रमाता कहते

है। इसका उत्तर यह है कि व्यवहार जब पूर्वसिद्ध होता है तब निमित्तका अनुसरण किया जाता है। स्वेच्छा-कल्पित निमित्तसे लोक-व्यवहारका नियमन नहीं होता। अव्यवस्थासे तो व्यवहारमें विप्लव ही हो जायगा। किसी भी महर्षिने स्मृतिके करणके रूपमें पृथक्-रूपसे किसी प्रमाण-व्यवहारका उपदेश नहीं किया। इस विषयमें वाचस्पति मिश्र और उदय-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नाचार्य—दोनों सहमत हैं। आचार्य शिवादित्य मिश्रने भी अपनी लक्षण-मालामें तत्त्वानुभूतिको ही प्रमा कहा है। 'भासर्वज्ञ' ने भी सम्यक् अनुभवको प्रमा और उसके करणको प्रमाण कहा है।

जयन्त भट्टने स्मृतिको प्रमा न माननेका यह कारण बताया है कि वह अर्थ-जन्य नहीं है। विषयरूप अर्थसे अतिरिक्त सामग्रीके द्वारा उत्पन्न होनेके कारण वह प्रमा नहीं हो सकती। 'न्यायकन्दली'कारने जयन्त भट्टकी युक्तिका खण्डन करके मीमांसक पद्धतिसे स्मृतिके प्रामाण्यका खण्डन किया है। उनका कहना है कि प्रत्यक्षादि प्रमाणसे वस्तुका ग्रहण करके यथार्थ अनुभव-रूप प्रमा हुई, अब उसी प्रमासे स्मृतिकी उत्पत्ति हुई। इसका अर्थ हुआ कि जो पहले गृहीत हो चुका है, स्मृतिके द्वारा उसीका ग्रहण हुआ। अतः स्मृतिमें गृहीत ग्राहकता होनेके कारण प्रामाण्य नहीं है। जो वर्तमानमें अर्थकी उपस्थिति न होनेके कारण स्मृतिको प्रमा नहीं मानते हैं, उनके मतमें भूत-भविष्य-विषयक अनुमान भी अप्रमाण हो जायगा और उससे प्रमाकी उत्पत्ति नहीं होगी। अतः गृहीत ग्राही होनेके कारण स्मृतिको अप्रमाण मानना उचित है।

'न्यायसिद्धान्त-मुक्तावली'-कार विश्वनाथ पूर्वाचार्योंसे कुछ आगे बढ़कर स्मृतिको प्रमारूप तो स्वीकार करते हैं परन्तु प्रमाणरूप स्वीकार करनेमें संकोचका अनुभव करते हैं। उनका कथन है कि भ्रम-भिन्न ज्ञान प्रमा है, अर्थात् स्मृति भी प्रमा है। यदि यह प्रश्न उठाया जाय कि स्मृतिको प्रमा माननेपर उसका कारण-रूप प्रमाण भी प्रत्यक्षादिसे अलग स्वीकार करना पड़ेगा, तो इसका समाधान यह है कि जो यथार्थानुभवका करण है, वही स्मृतिका भी करण है अर्थात् स्मृति प्रमा तो है, परन्तु प्रमाण नहीं है इसलिए उसका प्रमाण अलग माननेकी आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः स्मृति पूर्वानुभव-जन्य संस्कारकी पुत्री ही है और जितना उसमें है उससे नवीन कुछ नहीं बता सकती, इसलिए न वह करण है, न उसका कोई करण है। पूर्वानुभवको प्रमाणजन्य तो कहा जाता है, परन्तु उसको प्रमाण नहीं कहा जाता।

'तर्कसंग्रह'में जो जैसा हो उसको वैसा ही यथार्थ अनुभव करना 'प्रमा' है, प्रमाका ऐसा लक्षण किया गया है। अनुभव पदके प्रयोगका अर्थ ही यह है कि स्मृति प्रमा नहीं है। फिर भी, वहाँ स्मृति दो प्रकारकी मानी गयी है—१. यथार्थ, २. अयथार्थ। पहली, प्रमा-जन्य है, दूसरी अप्रमा जन्य। प्रमाजन्य स्मृतिको यथार्थ स्वीकार करनेपर भी उसे प्रमा-रूप

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नहीं माना गया; इसका कारण क्या है—इसपर विद्वान् विचार करें। जन्य-जनक भावमें वैजात्य होना कैसे उचित है ?

योगशास्त्रमें स्मृति

इसके मतमें वृत्तियाँ पाँच हैं—प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। इनमें अन्तिम वृत्ति स्मृति है। प्रमाणादिके द्वारा अनुभूत विषयोंका अन्तःकरणसे विलोप न होना—इसका लक्षण है। योगमतमें अनुभूति सविषय होती है, निर्विषय नहीं; क्योंकि अनुभूति विषयोपरक्त होकर विषयको और अपनेको प्रकाशित करती है और अपने समान जातीय संस्कारको जन्म देती है। उससे उत्पन्न संस्कार भी अपने कारणके अनुरूप विषयाकार और ज्ञानाकार स्मृति उत्पन्न करते हैं। यह स्मृति और वृत्तियोंसे विलक्षण है; क्योंकि यह किसी अन्य वृत्तिके द्वारा गृहीत विषयको ही प्रकाशित करती है। 'दूसरी वृत्तियाँ अनधिगत विषयको सामान्य-विशेषरूपसे प्रकाशित करती हैं परन्तु स्मृति उनसे बिलकुल निराली है और पूर्वानुभवकी मर्यादाका उल्लंघन नहीं करती। पूर्वानुभूत विषय अथवा उससे कुछ न्यून विषयको ही प्रकाशित करती है, अधिक नहीं।' (तत्त्व-वैशारदी १।११) अतएव प्रमाण विपर्यय, विकल्प, और निद्रा—इन चारों अवस्थाओंमें जो कुछ अनुभव होता है उसीको विषय करती है यह स्मृति। स्मृतिको अपनी स्मृति भी होती है जैसे 'मुझे कल यह स्मृति हुई थी। इसे मन और बुद्धिकी भी स्मृति होती है। यह स्मृति दो प्रकारकी होती है—१. भावितकी स्मृति, २. अभावितकी स्मृति। पहली स्वप्नमें होती है। अननुभूत देश-काल-सम्बन्धादिका स्मरण वहीं सम्भव है। दूसरी जाग्रद्-दशामें होती है। इस मतमें अज्ञात तत्त्वका ज्ञान प्रमा है। वह पौरुषेय एवं व्यवहारका हेतु है। प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम प्रमाण हैं। विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति—ये प्रमा नहीं हैं और इनके करण प्रमाण नहीं हैं।

सांख्यशास्त्रमें स्मृति

इस मतमें भी स्मृतिको प्रमा और उसके करणको प्रमाण नहीं मानते। 'सांख्य-तत्त्व-कौमुदी'में कहा है कि असंदिग्ध, अविपरीत एवं अनधिगत विषयको ग्रहण करनेवाली चित्तवृत्ति, पौरुषेय बोध, फलरूप प्रमा है। उसका साधन प्रमाण है। इससे सिद्ध होता है कि संशय, विपर्यय, स्मृति एवं उनके साधन न प्रमा हैं और न तो प्रमाण हैं। स्मृति अनधिगत विषयका ज्ञापक नहीं है और ज्ञान भी नहीं है।

शैवमतमें स्मृति

इस मतमें केवल तीन प्रमाण स्वीकृत हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

शब्द। प्रमा हमारी चिच्छक्ति है। वह संशय, विपर्यय और स्मृतिसे पृथक् है—ऐसा कहा गया है।

द्व्यालम्बा संशयो बुद्धिः
समानाकारदर्शनात्।
विपर्ययोऽन्यथाज्ञानमेतद्
रूप - प्रतिष्ठितम्॥
अनुभूतार्थविषयामतिः
स्मृतिरिहोच्यते।
एभिर्विहीना चिच्छक्तिः
प्रमाणत्वेन कल्पिता॥

बुद्धिके द्वारा दो आलम्बनका पकड़ा जाना संशय है। जैसे, 'यह है कि वह', 'ऐसा है कि वैसा' इत्यादि। यह सादृश्य प्रतीतिसे होता है। अन्यथा ज्ञान विपर्यय है, जो वस्तु जैसी नहीं है, उसको वैसी मानना। अनुभूत अर्थको विषय करने-वाली मति स्मृति है। इनसे पृथक् चिच्छक्ति है, वह प्रमा है।

यह स्मृतिके प्रमात्व और प्रमा-णत्वका खण्डन है।

सत्त्व; रज, तमकी साम्यावस्था प्रकृति है। उससे त्रिगुणात्मक चित्तकी उत्पत्ति होती है। इसी चित्त-तत्त्वसे सत्त्वका उद्रेक और रज-तमका अभि-भव होनेपर बुद्धि-तत्त्वकी उत्पत्ति होती है। शैव सम्प्रदायमें इस बुद्धिको छत्तीस तत्त्वोंमें-से एक मानते हैं। बुद्धि दो प्रकारकी होती है—अध्य-वसायात्मिका और अनध्यवसाया-त्मिका। अध्यवसायं अर्थात् निश्चय। यह बुद्धि ही स्मृतिजनक संस्कारका आश्रय होती है। इस बुद्धिकी ही सात्त्विक वृत्ति है—स्मृति, 'यह वही घड़ा है जिसे कल कहीं दूसरी जगह देखा था।' धर्म-ज्ञानादि बुद्धिके गुण हैं। उन्हें वृत्ति कहते हैं। उनकी संख्या बारह सौ है। उनमें सन्तोष, सरलता, पवित्रता, निश्चय, क्षमा, स्मृति, सौहित्य, औत्सुक्य, दान्ति, शान्ति आदि सत्त्वगुणी वृत्तियाँ हैं।

किसी-किसीका कहना है कि वस्तुतः स्मृति न प्रमाण है, न प्रमा (यथार्थानुभूति); क्योंकि अनुभूति 'यह घट है' इस प्रकार वर्तमान घटको विषय करती है। परन्तु स्मृति पूर्वावस्था-विशिष्ट घटको इस समय विषय करती है। ऐसी स्थितिमें पूर्वा-वस्थाधारत्व-विशिष्ट घटको तदविशिष्ट रूपमें ही विषय करनेके कारण स्मृति यथार्थानुभूति नहीं है। अनुभव प्रमा है; क्योंकि वह यथार्थ बोध है।

पूर्वमीमांसामें स्मृति

कुमारिल भट्टके अनुयायी कहते हैं कि निर्दोष कारण हो, कोई बाधक ज्ञान न हो और अज्ञातका ज्ञापक हो, तब उसे प्रमाण कहते हैं। उनका अभिप्राय है कि अज्ञात-ज्ञापकता तो प्रमाणमें होनी ही चाहिए। स्मृतिमें जो पूर्ववर्ती यथार्थ विज्ञान है, वही प्रमाण है। स्मृतिमें उसका पुनः प्रत्युपस्थान-मात्र ही है, अज्ञात-ज्ञापकता नहीं। पहले जाने हुएको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जाननेमें क्या प्रामाणिकता है? अतः उनके मतमें स्मृति प्रमाण या प्रमा नहीं है।

प्रभाकरके अनुयायी भी अनुभूतिको ही प्रमाण मानते हैं और उसे स्मृतिसे अलग मानते हैं (बृहती १।१५)। उनका कहना है कि स्मृतिका पितामह पूर्व-विज्ञान है, पिता संस्कार है। पूर्वविज्ञानकी उत्पत्तिमें प्रमाण चरितार्थ हो चुका है और पूर्वविज्ञान स्वयं प्रमा है। स्मृति यथार्थ होनेपर भी न प्रमा है, न प्रमाण।

बौद्धमतमें स्मृति

इस मतमें विसंवादरहित ज्ञानको प्रमाण और अविसंवाद-अनुभवको प्रमा मानते हैं। प्रमाणका लक्षण अज्ञातार्थ-ज्ञापकता ही है। इसीसे यह भी मीमांसकोंके समान स्मृतिकी प्रामाणिकताको स्वीकार नहीं करते। इनके मतमें भी पहले ग्रहण किये हुएको ही ग्रहण करानेके कारण स्मृति प्रमाण नहीं है। इसका मूल यह है कि बौद्ध-दर्शनोंमें किसी भी विकल्प ज्ञानको प्रमाण नहीं मानते; फिर, स्मृतिको ही क्यों मानेंगे? वह भी तो विकल्प रूप ही है।

वेदान्तमतमें स्मृति

इस मतमें स्मृतिको प्रमा एवं अप्रमा—दोनों ही स्वीकार करते हैं। 'वेदान्तपरिभाषा'में कहा है कि 'अनधिगत और अबाधित विषयका ज्ञान प्रमा है और वह स्मृतिसे भिन्न है, परन्तु केवल अबाधित विषयका जो ज्ञान है वह भी प्रमा है और स्मृति-रूप भी है। अर्थात् स्मृति-रूप प्रमा अबाधित ज्ञान-विषयक है और स्मृति-भिन्न प्रमा अनधिगत और अबाधित ज्ञान-विषयक है।' मेरे विचारसे इस मतभेदमें मूलतः यथार्थानुभव या यथार्थज्ञानको प्रमा माननेकी चिरन्तन धारा ही कारण है। कहीं-कहीं इसको प्रमा भी कहा गया है। वेदान्तियोंका कहना है कि स्मृति भी 'प्रमाण' ही है। इससे यह सिद्ध होता है कि जब स्मृति प्रमा है तब उसके करण अनुभवको भी प्रत्यक्षादिके समान एक प्रमाण स्वीकार करना पड़ेगा। इस प्रसंगमें 'प्रमाण' शब्दका अर्थ भी प्रमा ही है। व्याकरणकी रीतिसे यहाँ भावमें ल्युट् प्रत्यय हुआ है। अद्वैत मतमें स्मृतिके सम्बन्धमें चार बातें मानी गयी हैं— १. स्मृति संस्कारसे पैदा होती है, २. परोक्षज्ञान-रूप है, ३. दोषजन्य नहीं होती और ४. असन्निहित विषयके सम्बन्धमें

प्रेमकुटीरमें कोई उत्सव था। अनेक महात्माओंके प्रवचन होने थे। श्रीहरिकिशनदास अग्रवालने महाराजश्रीसे पूछा—'आप पहले प्रवचन करेंगे या पीछे?'

महाराजश्रीने कहा—'पहले प्रवचन करेंगे तो ड्राइवर और पीछे करेंगे तो गार्ड।' सब हँसने लगे।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होती है। वस्तुतः साक्षादपरोक्ष प्रत्यक्चैतन्याभिन्न ब्रह्म ज्ञात होनेपर स्मृतिका विषय नहीं है, अपरोक्ष ही है। अज्ञात होनेपर उसकी स्मृति नहीं हो सकती। जिसको प्रमा नहीं है, उसकी स्मृति कैसे होगी? अतः इस मतमें स्मृति गौण प्रमा ही हो सकती है, मुख्य नहीं।

मध्वाचार्यके मतमें स्मृति

इस मतमें स्मृतिको प्रमाण माना गया है। मध्वाचार्य श्री आनन्दतीर्थ-प्रणीत 'प्रमाण-लक्षण'में अन्य मतों-का निरसन करके स्मृतिकी प्रमाणता सिद्ध की गयी है। उनका कहना है कि स्मृति संस्कार-जन्य नहीं है, मानस-प्रत्यक्ष-जनित है, क्योंकि मन दो प्रकारका ज्ञान उत्पन्न करता है। इन्द्रियोंका अधिष्ठाता होनेके कारण उनके विषयका ज्ञान और स्वतन्त्रतासे स्मरण—इन दोनोंका वही कारण हैं। संस्कार सहकारी है अथवा प्रत्या-सन्न है। जैसे योगियोंको अतीत, भविष्य अथवा दूरस्थका प्रत्यक्ष ज्ञान हो जाता है, सन्निकर्ष न होनेपर भी। ठीक उसी प्रकार मानस-प्रत्यक्षता भी होती है। जैसे वेद 'अग्निर-हिमस्य भेषजम्' इत्यादि मन्त्रोंके द्वारा प्रत्यक्ष-सिद्ध अर्थका अनुवादक होनेपर भी प्रमाण हैं, वैसे ही। आचार्यके अनुयायी दूसरोंके मतका खण्डन करके यह स्थिर करते हैं कि यथार्थता ही प्रमाण है। इसके लिए एक श्रुति भी उद्धृत करते हैं। उनका कहना है कि यदि स्मृति प्रमाण नहीं होगी तो अनुभूत भी प्रमाण नहीं होगा। स्मृतिके विना 'मैंने यह अनु-भव किया है'—इसमें क्या प्रमाण है?

जैनमतमें स्मृति

जैनाचार्य कहते हैं कि परोक्ष प्रमाणके अन्तर्गत स्मृति भी प्रमाण है। उनके मतमें प्रत्यक्ष और परोक्ष—दो प्रमाण हैं। स्मृति वासनोदबोधसे होती है और उसका आकार होता है—'वह'। इसका अभिप्राय यह है कि जब आवरण-भंग, शान्ति, सदृश-दर्शन आदि सामग्रीसे वासना जग जाती है तब वह स्मृतिको उत्पन्न करती है, उसके जागरणके विना स्मृति उत्पन्न नहीं होती।[१] संस्कार, वासना, धारणा, भावना—इनका एक ही अर्थ है। जब बुद्धि 'वही घड़ा, वही साड़ी, वही कुण्डल'—ऐसा उल्लेख करती है, तब उसको स्मृति कहते हैं।

'सर्वार्थसिद्धि'के अनुसार स्मृति

१. गौतमीय न्यायदर्शनमें स्मृतिके पचीस निमित्त लिखे हैं—प्रणिधान, निबन्ध, अभ्यास, लिंग, लक्षण, सादृश्य, परिग्रह, आश्रय, आश्रित, सम्बन्ध, आनन्तर्य, वियोग, एककार्य, विरोध, अतिशय प्राप्ति, व्यवधान, सुख-दुःख, इच्छा-द्वेष, भय, अर्थित्व, क्रिया, राग, धर्म और अधर्म।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रमाण है, क्योंकि वह अविसंवादी है अर्थात् वस्तुको ज्यों-का-त्यों प्रकट करती है। प्रश्न—जब अनुभूयमान विषय है ही नहीं, तब आलम्बनहीन स्मृति प्रमाण कैसे होगी ? उत्तर—अनुभूत अर्थका आलम्बन उसे प्राप्त है, अतः निरालम्बन नहीं है। यदि अनुभूत अर्थके द्वारा सालम्बन होनेपर भी स्मृतिको अप्रमाण माना जायगा तो क्या प्रत्यक्ष भी अप्रमाण नहीं

उत्तर—ऐसा कहना उचित नहीं है; क्योंकि दूसरे प्रमाण भी अर्थजन्य नहीं होते। यदि अर्थजन्य ज्ञानको ही प्रमाण मानोगे तो मरु-मरीचिकामें दीखनेवाले जलका ज्ञान भी अर्थजन्य होनेके कारण प्रमाण हो जायगा। बात यह है कि जैसे दीपक अपनी कारण-सामग्रीसे प्रकट होकर घटादिसे अजन्य होनेपर भी उनको प्रकाशित करता है; उसी प्रकार आवरण-क्षय

नाम ही ध्यान और प्रेमका कारण

हम अपने मुखसे जितनी बार भगवन्नामका उच्चारण करते हैं, उतनी बार वह हमारे हृदयमें इष्ट-प्रेमके रंगसे अनुरंजित भगवदाकारका आधान करता है। ठीक वैसे ही, जैसे किसी वस्त्रपर ठप्पेसे छपाई की जा रही हो। यदि हृदय विषयाकारतासे मुक्त एवं शिथिल हो, तो थोड़ी देरके लिए इष्टका आकार दीखने लगता है। परन्तु यदि हृदय अन्य आसक्तियोंके रंगसे विनिर्मुक्त, निर्मल एवं द्रवित हो, तो नामके द्वारा आहित आकार, माहात्म्य, बुद्धि एवं प्रीति भी क्रमशः स्थिर हो जाते हैं। नामसे ही चित्त द्रुत होता है और द्रुत चित्त ही नामसे इष्टाकार होता है। नामकी आवृत्तिसे ही रसका आविर्भाव एवं वृद्धि होती है। भक्ति-मार्गमें नामसे बढ़कर दूसरा कोई आलम्बन नहीं है।

हो जायगा ? क्योंकि वह भी तो अनुभूतार्थ-विषयक ही होता है और तुम अनुभूतार्थकको निरालम्बन मानते हो। जैसे प्रत्यक्ष, अनुमानादिमें अनुभूत विषयका ही भान होता है, वैसा स्मृतिमें भी है।

प्रश्न—विनष्ट विषय स्मृतिका जनक कैसे हो सकता है ? अतः अर्थसे अजन्य होनेके कारण स्मृति अप्रमाण है।

एवं उपशान्तिकी अपेक्षासे इन्द्रिय और मनके द्वारा बल प्राप्त करके प्रकट होनेवाला संवेदन-दीपक भी अपने विषयको प्रकाशित करता है। योगज ज्ञान अतीत और अनागत अर्थको प्रकाशित करता है और अर्थ-जन्य न होनेपर भी निर्विवाद-रूपसे प्रमाण माना जाता है। आप यह तो बताइये, महाशय ! कि स्मृतिको प्रमाण नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मानियेगा तो अनुमानकी प्रमाणता कैसे सिद्ध होगी; क्योंकि स्मृति यदि 'व्याप्ति'को विषय नहीं करेगी तो अनुमानका उत्थान ही नहीं होगा। यह सर्ववादी-सम्मत सिद्धान्त है कि अनुमान लिङ्ग-ग्रहण-सम्बन्ध स्मरण-पूर्वक ही होता है। अतः स्मृतिको प्रमाण मानना आवश्यक है।

ये हैं संक्षेपमें शास्त्रीय पक्ष। अब मेरा निवेदन सुनिये। स्मृतिको प्रमाण न माननेमें मुख्य-रूपसे तीन हेतु बताये गये हैं—१. लोक-व्यवहार न होना, २. पूर्वगृहीतका ही ग्रहण करना और ३. अर्थ-जन्य न होना। वाचस्पति मिश्र और उदयनाचार्यने पहला हेतु दिया है। परन्तु इस समय लोक-व्यवहारमें स्मृतिको सभी प्रमाण मानते हैं। शास्त्रीय परिभाषाकी मर्यादामें बँधे हुए लोग अपनी प्रमा-परिभाषाकी परिधिमें रहकर उसे न मानते हों—यह दूसरी बात है। साधारण जन स्मृतिको ही व्यवहारमें अनुमत्रके समान ही मानते हैं और शास्त्रज्ञ भी ऐसा ही करते हैं। जयन्त भट्टने अर्थजन्य न होनेके कारण स्मृतिको अप्रमाण माना है, परन्तु स्मृति के साथ ही क्या अनुमानादिका प्रामाण्य खण्डित नहीं हो जाता। यदि अर्थ-जन्य न होनेपर भी अनुमान प्रमाण हो सकता है तो स्मृतिको प्रमाण माननेमें क्या बाधा है? जो लोग गृहीत-ग्राही होनेके कारण स्मृतिको प्रमाण नहीं मानते, उनका कहना इस अंशमें तो ठीक है कि स्मृतिमें कोई अपूर्वता नहीं है तथापि वह यथार्थ तो है न! यदि सत्यताके अतिरिक्त और कुछ प्रमा या प्रमाण हो तो वह स्मृतिमें भले न रहे परन्तु सत्यता-रूप प्रमा तो है ही। यदि गृहीत-ग्राहिताको ही अप्रमाणका हेतु मानें तो वह दोष अनुमानमें भी रहेगा, तो वह कैसे प्रमाण होगा? व्याप्ति-ज्ञान गृहीत हुए विना अनुमान-प्रवृत्त नहीं होता। इस प्रकार अन्यत्र गृहीत-ग्राहीको प्रमाण मानते हैं तो स्मृतिको माननेमें क्या हानि है?

यह भी ध्यान देने योग्य है कि प्रत्यभिज्ञामें भी तो स्मृति ही है। क्या उसकी यथार्थतामें सन्देह होता है? तब स्मृतिके सम्बन्धमें सन्देह क्यों? जहाँ स्मृतिकी यथार्थतामें सन्देह है, वहाँ स्मृति नहीं, स्मृत्याभास है, प्रत्यक्षाभासके समान।

वैशेषिक रीतिसे बुद्धिके अन्तर्गत एक विद्या है—स्मृति। विद्या अदुष्ट होती है। इस वर्णनसे स्मृतिकी यथार्थता सिद्ध होती है। इस विचार-सन्दर्भसे हम इस निश्चयपर पहुँचते हैं कि यदि अपने-अपने शास्त्रकी परि-भाषा-मर्यादासे तटस्थ होकर स्वतन्त्र विचार करें तो स्मृतिकी प्रमाणरूपता, प्रमारूपता और अनुमानके लिए उप-योगिता निर्विवाद-रूपसे स्वीकार कर लेनी चाहिए।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अमरत्वका जयगान है जीवन

● प्रदीप

नहीं यह भोग या भवरोगका आगार है जीवन,
नहीं दनुजत्वका पाखण्डमय आचार है जीवन।
न है यह सेज सुमनोंकी सरस मकरन्दमय मादक,
प्रखर असि-धार है बलिदानका व्यापार है जीवन॥

घृणा, ईर्ष्या, कलहका तो नहीं भण्डार है जीवन,
नहीं विद्वेष, छलना, दर्पका आगार है जीवन।
न जीवन कामनाओंका कलित आख्यान है साथी,
परम करुणेश जगदाधारका उपहार है जीवन॥

तपस्या, त्याग, संयमकी धधकती आग है जीवन,
सहजता, प्रेम, मुदिताका मधुरतम फाग है जीवन।
निरर्थक है नहीं, इसमें भरे हैं दिव्यगुण सारे,
दनुजतापर मनुजताकी विजयका राग है जीवन॥

प्रबल अज्ञान-तममें दिव्य ज्योतिर्गान है जीवन,
प्रलय-पलमें सृजनकी नित्य नूतन तान है जीवन।
मनुज आपत्तियोंके व्यूहमें घिर हार क्यों माने?
सफलता, सिद्धि औ सामर्थ्यका वरदान है जीवन॥

●●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

निदाघका निर्माण

[वि. नां. द्विवेदी]

अतिथि पाकर गृहस्वामी निहाल हो रहा था। आज भोजनके समय उसके घर एक सन्तका आगमन हुआ है। भोजनकी सम्पूर्ण सामग्री सजाकर जल, आसनकी व्यवस्था सम्पन्न कर उसने अतिथसे भोजनके लिए आग्रह किया।

किन्तु अतिथि, वह तो विचित्र निकला, उसने तुरन्त गृहस्वामीसे घरमें बने अन्नकी तालिका तलब की। गृहस्वामोने विनम्र निवेदन किया 'महाराज! घरमें सत्तू है, जौकी लप्सी है, दलिया है, बाटी भी बनी है, आपको जो रुचे ले आऊँ। अतिथि भड़क उठा—'छिः छिः मैं तुम्हारे यहाँ यही सब खाने आया हूँ। मैं इस प्रकारका कदन्न नहीं खाता।'

गृहस्वामीने हाथ जोड़ लिया, पूछा—'महाराज! फिर मैं क्या सेवा कर सकता हूँ?' महात्माने आदेश दिया—'मुझे तो मालपूआ हलवा, श्रीखण्ड, और खीर खिलाओ।' अन्ततः गृहस्वामीने पत्नीको आदेश दिया—'महात्माजीके लिए यथासम्भव स्वादिष्ट भोजन कराओ।'

सुविनीता पत्नीने पतिके आदेशका पालन किया। अतिथिने भोजन किया, फिर भी कर्तव्यपरायण गृहस्वामीको सन्तोष नहीं हुआ। उसके मनमें यह संकल्प-विकल्प उठता रहा - कहीं अतिथिकी अतृप्ति बनी तो नहीं है? 'महाराज! आप सन्तुष्ट तो हैं? आपकी भूख शान्त तो हुई? आपका शुभागमन किधरसे हुआ है? आपका निवास-स्थान कहाँ है? आप किधर जाना चाहते हैं?' पूछ लिया—गृहस्वामीने।

महात्मा बोले—'भूख क्या है? जिसको भूख लगती है,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तृप्ति भी होती है। मुझे कभी भूख लगी ही नहीं तो तृप्तिका प्रश्न ही क्या है? जठराग्निके कारण ठोस वस्तुका क्षरण होनेसे क्षुधा प्रतीत होती है, जलके क्षीण होनेसे तृषाका अनुभव होता है। भूख और प्यास शरीरके धर्म हैं, मेरे नहीं, अतः मैं तो सदा ही तृप्त हूँ। 'मैं स्वस्थ हूँ—मैं प्रसन्न हूँ' ये भाव भी मनके ही हैं, आत्मासे इनका क्या सम्बन्ध ?'

'आत्मा सर्वगत विभु है। इसका आना-जाना या किसी विशेष स्थानमें रहना कैसे सम्भव है? वस्तुतः तू, मैं, वे भी भिन्न-भिन्न नहीं हैं। जैसे देहादिके कारण दिखायी पड़ते हैं—वैसे ये नहीं हैं।'

'भोजन स्वादु और अस्वादु क्या? स्वादु ही अस्वादु हो जाता है। अरुचिकर पदार्थ भी स्वादु होते देखा जाता है। ऐसा कौन-सा अन्न है जो हमेशा ही रुचिकर रहे। जैसे मिट्टीका घर लीपने-पोतनेसे ठीक रहता है—वैसे ही पार्थिव देह पार्थिव अन्नके कणसे पुष्ट होता है। इसपर ठीक-ठीक विचार करके इस स्वादु-अस्वादुमें सम-चित्त बना लेना चाहिए।'

'निदाघ! मैं 'ऋभु' हूँ—तुम्हारा गुरु हूँ। तुम्हें सदसद्-विवेकिनी बुद्धि देने आया हूँ। 'वासुदेवः सर्वमिति' इस परमार्थ-तत्त्वपर विचार करो। क्या इसके बाद भी कोई भेदभाव शेष रहता है?'

निदाघने श्रद्धावनत उनके चरणोंमें प्रणाम किया और ऋभु वहाँसे उठकर स्वेच्छया चल पड़े।

× × ×

देविका नदीके तटपर वीरनगरमें आज विशेष समारोह था। रम्य नगरकी समृद्धि देखने ही योग्य थी। सारी प्रजा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सड़कपर उमड़ पड़ी थी। इस भीड़-भाड़से—जनकोलाहलसे बचता हुआ कुश-समिधा हाथमें लिये एक ब्राह्मण दुबक- सिमट रहा था। इसी बीच पीछेसे एक साधु उसके समीप आ खड़ा हुआ। उसने पूछा—'ब्राह्मणदेव! आज क्या विशेष बात है?'

ब्राह्मण बोला—'महाराज! देखो अभी-अभी राजा हाथीपर चढ़े हुए इधरसे निकल रहे हैं। उनका दर्शन करनेके लिए यह सारी प्रजा इकट्ठी हो रही है।'

साधुने पूछा—'महाराज! मेरी समझमें नहीं आया इसमें कौन राजा है, और हाथी क्या है?'

ब्राह्मण—'महाराज! इसमें काला-काला नीचे हाथी है, जिसपर राजा सवार है। राजा वह व्यक्ति है जो ऊपर छत्र-मुकुट लगाये उसपर बैठा है। हाथी उसे ढो रहा है—उसका वाहन है।'

साधु बोला—'ब्रह्मन्! मुझे यह समझाइए कि इसमें 'नीचे' शब्दका क्या अर्थ है और 'ऊपर' किसे कहते हैं?'

अब तो ब्राह्मणसे रहा नहीं गया वह तिलमिला उठा। समिधा-कुशा एक किनारे किया और चटसे साधुके कन्धेपर चढ़ बैठा। बोला—'देखो! तुम नीचे हो हाथीकी तरह और मैं 'ऊपर' हूँ राजाकी भाँति। अब समझे!'

इतनेपर भी सहनशील साधु बोला—'अहो ब्राह्मणदेवता! आप राजाके समान हैं और मैं हाथीकी तरह। यह तो ठीक, पर यह तो बताइए 'आप कौन हैं? और मैं कौन हूँ?'

अब तो ब्राह्मणके मष्तिस्कमें बिजली कौंध गयी। पूर्व स्मृति-संस्कार जागे। साधुके चरणोंमें लिपट गया। बोला—'महाराज! आप तो निश्चित ही हमारे गुरु 'ऋभु' हैं। निश्चित ही ऐसी अद्वैत-निष्ठा किसी दूसरेकी हो नहीं सकती।'

'सभी पदार्थोंमें अद्वैत आत्म-बुद्धि रखना' यही परमार्थसार है। परमेष्ठी ब्रह्माके पुत्र महर्षि ऋभुने हजार-हजार दिव्य वर्षोंकी देरी और दूरी होनेपर भी महर्षि पुलस्त्यके पुत्र 'निदाघ'को फिर एक चेतावनी दी। सोतेसे जगाया। 'ब्रह्मपर' बना दिया।

(विष्णुपुराण)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाकवि माघ का वैदुष्य

श्री टी० के० गोपालस्वामी अय्यंगर,

शास्त्रकार, एम० ए०, एफ० आर० ए० एस्,

प्राध्यापक संस्कृत-विभाग; वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय

तिरुपति

हमारे महाकवि प्रायः क्रान्त-दर्शी, वर्णना-निपुण एवं चतुर्दश प्राच्य विद्याओंके पारदर्शी विद्वान् होते हैं। दर्शनशास्त्रमें विशेष करके वेदान्तमें उनका अनुभवपूर्ण प्रवेश होता है और वे यश, अर्थ, व्यावहारिक ज्ञान, दुःख-पापकी निवृत्ति तथा परमानन्दकी प्राप्तिके उद्देश्यसे मधुर, कान्त, कोमल पदावलीका विन्यास करके कान्तासम्मित भाषामें महाकाव्यका निर्माण करते हैं। काव्योंमें 'कालिदास'की उपमा-चातुरी 'दण्डी'को पद-माधुरी और 'भारवि'की अर्थ-गौरव वैदग्धी लोकप्रसिद्ध है। इन तीनोंके चारु चित्रण और विशिष्ट सौन्दर्यको एकत्र प्रदर्शित करनेके लिए ही महाकवि माघने शिशुपाल-वध नामक काव्यका निर्माण किया। कवि-जगत्में इस महाकाव्यने अपनी विजय-वैजयन्ती फहरा दी।

कालिदास, दण्डी प्रभृति महा-कवियोंके अन्तर्देशमें यह विचारधारा प्रवाहित हो रही थी कि उदार महा-पुरुषके चरित्रका काव्यमय वर्णन करके लोगोंको नीति, मर्यादा और सदाचारकी प्रेरणा दी जाय जिससे लोग अपने-अपने श्रेयको प्राप्त करें। अवश्य ही वे अपनी परियोजनामें सफल हुए। महाकवि माघकी यह विशेषता है कि उन्होंने अपना सारा भार

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें समर्पित करके उन्हींके दिव्य गुण एवं लीलामें अपनी मनोवृत्ति-रूप गोपियोंको नचा रहे हैं। परम तत्त्व होनेपर भी भक्तोंके लिए परम सुलभ श्रीकृष्णके चरित्रका निरूपण करनेके लिए उन्होंने वीस अध्यायके पूर्वोत्तर मीमांसाके समान ही वीस सर्गका महाकाव्य बनाया जो कवियोंके काव्य-कर्मकी कसौटी है, निखिल रस-परिपुष्ट है और परमार्थजुष्ट है।

शिशुपाल-वधके व्याख्याकार कोलाचल मल्लिनाथ आन्ध्रदेशमें प्रकट हुए। वे महापण्डित थे। उनकी 'सर्वङ्कषा' व्याख्याके विना कविका हृदय समझना कठिन है। वे अपनी व्याख्याके आरम्भमें कहते हैं—

ये शब्दार्थ-परीक्षण-प्रणयिनो ये वा गुणालङ्क्रिया-
शिक्षाकौतुकिनो विहर्तमनसो ये च ध्वनेरध्वगाः।
क्षुभ्यद्भावतरङ्गिते रससुधा-पूरे निमंक्षन्ति ये
तेषामेव कृते करोमि विवृतिं माघस्य सर्वङ्कषाम्॥

जो विद्वान् शब्दार्थ-परीक्षणके प्रणयी हैं; गुण, अलंकार, शिक्षाके कौतुकी हैं,—विहार-प्रेमी हैं,—ध्वनिके पथिक हैं और भावके उत्ताल तरङ्गोंसे तरङ्गायित रस-सुधाके समुद्रमें निमग्न होना चाहते हैं; उन्हींके लिए मैं माघकी इस 'सर्वङ्कषा' विवृतिका निर्माण करता हूँ।

मल्लिनाथका केवल यही एक पद्य-रत्न माघके गुण-गौरवका गान करनेके लिए पर्याप्त है; क्योंकि उन्होंने पहले ही कालिदासादि महाकवियोंके काव्य-ग्रन्थोंकी व्याख्या कर ली है और काव्य-रसामृतका छक-छकके पान कर लिया है। वे महाकविकी विलक्षण काव्य-निर्माण विचक्षणताका उद्घोष करते हुए कहते हैं—

नेताऽस्मिन् यदुनन्दनः स भगवान्, वीरप्रधानो रसः
शृङ्गारादिभिरङ्गवान् विजयते पूर्णा पुनर्वर्णना।
इन्द्रप्रस्थगमाद्युपायविषयः चैद्यावसादः फलं
धन्यो माघ-कविर्वयं तु कृतिनस्तत्-सूक्ति-संसेवनात्॥

इस काव्यमें लोक-वेद प्रसिद्ध भगवान् श्रीकृष्ण नायक हैं, वीर रस-प्रधान है, शृङ्गारादि उसके अङ्ग हैं, वर्णनापूर्ण है, इन्द्रप्रस्थ-गमनादि उपाय हैं, शिशुपालवध फल है। माघ कवि धन्य हैं और हम उनकी सूक्तिका संसेवन करके कृतकृत्य हैं।

उदात्त हृदय, उदार मानस, निष्पक्ष मल्लिनाथ माघके काव्यको सूक्ति कहते हैं, मानो वे कोई व्यास, वाल्मीकि हों। अपनेको काव्यास्वादनसे धन्य मानते हैं। आस्तिक कवि प्रायः प्रामाणिक मूल कथा-वस्तुका परित्याग करके ही आगे बढ़ते हैं। प्रधान रसकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

धारा टूटने नहीं देते। अपने चरित-नायकका वर्णन इस शैलीसे करते हैं कि रसिक जिज्ञासुओंका मन प्रपञ्चसे दूर खींच लेते हैं और अत्यन्त गम्भीर, बहुमूल्य, श्रेयस्कर, औपनिषद तत्त्वोंको हीरेकी भाँति अन्तःकरण पीठपर ऐसी दृढ़तासे जड़ देते हैं कि वे चिरकालके लिए जम जायँ और आनन्द-फल फलते रहें। उनके हृदयमें होती है करुणा और बोलते हैं प्रेयसी कान्ताके समान। अनेक शताब्दियोंके व्यतीत हो जानेपर माघका काव्यरस अमृतके समान श्रोत्रपेय बना हुआ है और उनमें नित्य-नूतन स्वादका उन्मेष होता रहता है। आज भी हमारे अन्तर्देशका सूक्ष्मतम प्रदेश उसी रस-सुधाके परिवेशसे निरन्तर तर होता रहता है।

माघने कवि-रवि भारविके किरातार्जुनीय काव्यका आमूल-चूल अवगाहन करके ही उससे भी विशिष्ट माघ-काव्यका निर्माण किया है—यह किंवदन्ती निर्मूल नहीं है। काव्यार्थ-गुंफन, वर्णना-शैली, चित्र-बन्ध आदि विषयोंमें दोनोंका साहश्य दृष्टिगोचर होता है। उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारोंका सौन्दर्य, पद-प्रसाद, माधुरी और अर्थगौरवमें विलक्षण विचक्षणता भारवि-काव्यको निष्प्रभ बना देती है। कवियोंमें प्रसिद्ध यह वचन सर्वथा सच है कि 'भारविकी भा (प्रतिभा) कवतक, माघ न आवे तवतक।' आओ, अब इस विषयमें माघके शास्त्र-ज्ञानका थोड़ा-सा अनुसन्धान करें।

छन्दःशास्त्र—ऐसा लगता है मानो, कवि स्वयं अपने छन्द सम्बन्धी प्रकाण्ड पाण्डित्य और अभ्यास-पाटवको प्रदर्शित करना चाहता हो। चौथे सर्गमें अठारह उपजातियाँ, वसन्त-तिलका, शालिनी, पथ्या आदि अनेक वृत्तोंका विलास देखते ही बनता है। रैवतक पर्वतके वर्णन-प्रसंगमें ऐसी वृत्त-धारा प्रवृत्त हुई है कि जिसका वर्णन छन्दका वही नाम। कुररी, भ्रमर, वंशपत्र, मत्तमयूर, पुष्पिताग्रा—ये एक ओर तो वनश्रीको परिपुष्ट करती हैं और दूसरी ओर महाकवि कैसे प्रसंगमें किस छन्दका प्रयोग करते हैं, इसकी शिक्षा देती हैं। पन्द्रहवें सर्गमें पूर्णरूपसे उद्‌गता छन्दका प्रयोग किया गया है, जिसको पढ़ना भी कठिन है—

पुर एव शार्ङ्गिणि सवैरमथपुनरमुं तदर्चया।
मन्युरभजदवगाढतरः समदोषकाल इव देहिनां ज्वरः॥ (१५।२)

शिशुपाल पहलेसे ही श्रीकृष्णके प्रति वैरभाव रखता था। उनकी पूजा होनेपर तो वह क्रोध अत्यन्त गाढ़ होकर शिशुपालपर और चढ़ गया। जैसे कर्मफल और कुपथ्य सेवा—दोनोंके मिल जानेसे ज्वर बढ़ जाता है।

सांख्ययोग-शास्त्र—माघ अपने

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

काव्यमें सांख्यमत और योगमतका ज्यों-का-त्यों वर्णन करता है और दोनोंके लक्ष्यको ठीक-ठीक अभिव्यक्त करता है। माघका अनुशीलन करनेवालोंको स्थान-स्थानपर संक्षेप-विस्तारसे वे मिलेंगे।

मैत्र्यादिचित्तपरिकर्मविदो विधाय,
क्लेशप्रहाणमिह लब्धसबीजयोगाः।
ख्यातिं च सत्त्वपुरुषान्यतयाधिगम्य,
वाञ्छन्ति तामपि समाधिभृतो निरोद्धुम् ॥ (४।५५)

इस पर्वतपर समाधि-योगी पुरुष पुण्यवान्से मैत्री, दुःखीसे करुणा, सुखीसे मुदिता और पापीसे उपेक्षाका व्यवहार करके अपने अन्तःकरणको शुद्ध कर लेते हैं और अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष, अभिनिवेशसे मुक्त होकर सबीज योग प्राप्त करते हैं। तदनन्तर अन्तःकरण और आत्माके परस्पर भिन्नतारूप ख्याति-ज्ञान प्राप्त करके उस ख्यातिरूप वृत्तिका भी निरोध करके अपने स्वयंप्रकाश-स्वरूपमें स्थित हो जाते हैं।

इस श्लोकमें मैत्र्यादि चित्तके परिकर्म, अविद्या आदि क्लेश, सत्त्व-पुरुषान्यताख्याति, सबीज योग, समाधि निरोध आदि योगशास्त्रके पारिभाषिक शब्द हैं। इनका उचित स्थानपर प्रयोग माघके योगज्ञ होनेका सूचक है।

सांख्यशास्त्रमें स्वीकार किया गया है कि पुरुष उदासीन एवं कमल-पत्रवत् निर्लेप है। इस कविने भी अपने काव्यमें पुरुषका ऐसा ही वर्णन किया है। न केवल वर्णन, बल्कि सिद्धान्त भी जहाँ-तहाँ देख सकते हैं—

उदासितारं निगृहीत-मानसैर्गृहीतमध्यात्मदृशा कथञ्चन।
बहिर्विकारं प्रकृतेः पृथग्विदुः पुरातनं त्वां पुरुषं पुराविदः॥
(१।३३)

संयतमानस योगी अपनी अध्यात्म-दृष्टिसे यथाकथञ्चित् उदासीनके रूपमें तुम्हें ग्रहण करते हैं। पुराविद् जानते हैं कि तुम विकाररहित, प्रकृतिसे परे; पुरातन पुरुष हो। नारदजी कहते हैं कि श्रीकृष्ण! इसलिए तुम्हीं साक्षात् करणीय हो।

मीमांसा-शास्त्र—माघ वाक्य-शास्त्रज्ञ मीमांसकोंके मतको और उनकी याग-प्रक्रियाको विशेष-रूपसे जानते हैं। और कवियोंकी अपेक्षा इनका यह वैशिष्ट्य है—

शब्दितामनपशब्दमुच्चकैः वाक्यलक्षणविदोऽनुवाक्यया।
याज्यया यजनकर्मिणोऽत्यजन् द्रव्यजातमपदिश्य देवताम्॥
(१४।२०)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वाक्यलक्षणविद् मीमांसक, यजन-कर्मी ऋत्विक् शुद्ध-शुद्ध, उच्च स्वरसे, अनुवाक्या याज्याके द्वारा देवताका नामोच्चारण करके हविष्यका हवन करते हैं।

इस श्लोकमें कुछ ऐसी बातें कही गयी हैं जो प्रौढ़ मीमांसक हुए विना समझी नहीं जा सकतीं। देवताह्वानी ऋचाका पाठ प्रशास्ता करता है, वह न हो तो होता। अपशब्द बोलना अपराध है। ऋचाका उच्चारण ऊँचे स्वरसे होना चाहिए। 'अव्यजन्' इस क्रियापदका प्रयोग भी मीमांसाके गूढ़ ज्ञानका परिचायक है;क्योंकि यहाँ अध्वर्यु, होता एवं प्रशास्ताका भी सहयोग है।

इसी प्रसंगमें सामवेदके सप्त-स्वरका उल्लेख करके रथन्तरादि सामका यज्ञमें विनियोग-ज्ञान प्रकट किया गया है। करविन्यासके द्वारा सप्तस्वरोंका अभिव्यंजन, यज्ञमण्डपमें ऋग्यजुषका पारायण स्पष्ट करता है कि उनके मनमें यज्ञशालाका ठीक-ठीक चित्र अंकित है। आज्यावेक्षणकी श्रौती-प्रक्रिया, प्राणभृत्-न्याय, प्रणयन आदि पारिभाषिक शब्दोंका प्रयोग भी मिलता है। गार्हपत्यसे उद्धृत करके अग्निस्थापन, परिस्तरण, समिधाधान, सम्मार्जन आदि अग्नि-संस्कारोंका भी उल्लेख है। हमारा यह निश्चय है कि श्रौत मीमांसाशास्त्रमें माघ एक शिष्ट-सम्मत विशिष्ट विद्वान् हैं।

व्याकरण-शास्त्र—माघका शब्द-प्रयोग-कौशल पूर्णतः प्रमाणित करता है कि वे एक महावैयाकरण थे। देखिये—

अनुत्सूत्रपदन्यासा सद्-वृत्तिः सन्निवन्धना।
शब्दविद्येव नो भाति राजनीतिरपस्पशा॥ (२।११२)

शास्त्र-विरुद्ध एक कदम भी न रखे। भृत्य, अमात्य आदिकी ठीक-ठीक जीविका चलावे। स्थायी पारितोषिक प्रदान करे। इस प्रकारकी राजनीति भी चारकी अपकृष्टतासे शोभाहीन—निष्फल हो जाती है। ठीक वैसे ही जैसे, पस्पशाह्निकके विना शब्दविद्या।

इस श्लोकमें वर्णन राजनीतिका है और शब्द विद्याके साथ पूर्णोपमा-लंकार है। व्याकरणके सूत्र, पद, न्यास, वृत्ति, निवन्धन (भाष्य) और पस्पशाह्निकका उल्लेख है। 'स्पश'का अर्थ गुप्तचर है। राजनीतिमें वह अप-कृष्ट नहीं होना चाहिए और व्याकरणमें महाभाष्यान्तर्गत उपोद्घात-रूप प्रक-रणको 'पस्पश' कहा गया है। शब्द-श्लेष, अर्थश्लेष, उभयश्लेष भरा है। इससे माघकी व्याकरण-विषयक नैपुणी प्रकट होती है।

चौदहवें सर्गके तेइसवें श्लोकमें भी युगपद् व्याकरण-शास्त्र और मीमांसा-शास्त्रके 'ऊह' शब्दका प्रयोग किया गया है। वहाँ कहा गया है कि, ऊह-कुशल प्रयोक्ता 'सुप्तिङ्'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विभक्तियोंका और लिंग-वचनोंका विपरिणाम करनेमें बड़े विदग्ध थे। इन प्रसंगोंसे उनका प्रौढ़ व्याकरण-ज्ञान प्रकट होता है। याज्ञिक स्वरभेद-कृत अर्थभेदसे भी परिचित होते थे—यह कहकर उन्होंने अपना महाभाष्यका पाण्डित्य व्यक्त किया है।

वेदान्त-दर्शन—माघ कवि शास्त्रान्तरके समान ही वेदान्त-शास्त्रमें भी पूर्णतः निष्णात थे। इनके काव्यमें अधिकांश वेदान्त-सिद्धान्त मिलते हैं। प्रथम सर्गमें नारदके वचन औपनिषद सूक्तियोंसे भरपूर हैं। चौदहवें सर्गकी श्रीकृष्ण-स्तुतियोंमें इतिहास-पुराणादिमें उपबृंहित वेदान्त-तत्त्वोंका स्पष्ट अनुसन्धान और विवरण है।

मर्त्यमात्रमवदीधरद्भवान् मौनमान्मितदैत्यदानवम्।
अंश एष जनतातिवर्तिनो वेधसः प्रतिजनं कृतस्थिते॥
(१४।५९)

इन श्रीकृष्णने दैत्य-दानवोंपर विजय प्राप्त कर ली है। इन्हें आप केवल मनुष्यमात्र समझनेकी भूल न करें। ये सर्वलोकातीत, सर्व-भूतान्तर्यामी, घट-घट वासी, विधाता परमेश्वरके अंश हैं।

ध्येयमेकमपथे स्थितं धियः स्तुत्यमुत्तममतीतवाक्पथम्।
आमनन्ति यमुपास्यमादराद्दूरवर्तिनमतीव योगिनः॥
(१४।६०)

योगीपुरुष विलक्षण विरोधाभासके द्वारा इन्हीं कृष्णका निरूपण करते हैं। वे कहते हैं जो बौद्ध-ज्ञानका विषय नहीं है, वही यह एकमात्र ध्येय है। जो मन-वाणीसे अतीत है, वही यह उत्तम स्तुत्य है। जो अत्यन्त दूरवर्ती है, वही आदरपूर्वक निकटसे उपासना करने योग्य है।

पद्मभूरिति सृजन् जगद्रजः सत्त्वमच्युत इति स्थितिं नयन्।
संहरन्हर इति श्रितस्तमस्त्रैधमेष भजति त्रिभिर्गुणैः॥
(१४।६१)

यही हरि रजोगुणका आश्रय लेकर ब्रह्मा नामसे जगत्की सृष्टि करता है। सत्त्वका आश्रय लेकर विष्णु नामसे जगत्का पालन करता है और तमस्का आश्रय लेकर हर नामसे संहार करता है। तीन गुणोंसे यही त्रिविध हो जाता है अर्थात् सभी जीवोंका यदी आराध्य है।

सर्ववेदिनमनादिमास्थितं देहिनामनुजिघृक्षया वपुः।
क्लेशकर्मफलभोगवर्जितं पुंविशेषममुमीश्वरं विदुः॥
(१४।६२)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यह नित्य सर्वज्ञ, अनादि, अनन्त होनेपर भी प्राणियोंपर अनुग्रह करनेके लिए शरीर धारण करके अवतीर्ण हुआ है। यह क्लेश-कर्म और फल-भोगसे रहित पुरुष-विशेष ईश्वर है। ज्ञानी इसको ऐसा ही जानते हैं।

भक्तिमन्त इह भक्तवत्सले संततस्मरणरीणकल्मषाः।
यान्ति निर्वहणमस्य संसृतिक्लेशनाटकविडम्बनाविधेः॥
(१४।६३)

इस भक्तवत्सल भगवान्के प्रति भक्ति करके और अपने अन्तःकरणके कल्मषको क्षीण करके इस संसार-पारावारका पार प्राप्त कर लेते हैं; क्योंकि यह संसार-रूप क्लेश-नाटक विडम्बना इस कृष्णका ही तो एक अभिनय है।

ग्राम्यभावमपहातुमिच्छवो योगमार्गपतितेन चेतसा।
दुर्गमेकमपुनर्निवृत्तये यं विशन्ति वशिनं मुमुक्षवः॥
(१४।६४)

मुमुक्षुगण प्राकृत भावका परित्याग करनेके लिए अपने चित्तको योगमार्गमें डालकर इस वशी कृष्णमें ही प्रवेश करते हैं; क्योंकि यह अपुनरावृत्ति अर्थात् मोक्षका एकमात्र दुर्ग है।

इन श्लोकोंमें ये तत्त्व प्रतिपादित किये गये हैं—१. भगवान् सर्वान्तर्यामी हैं। २. वाणी-मनके अगोचर हैं। ३. सृष्टि-स्थिति-संसारके कर्ता हैं। ४. कर्मके पराधीन नहीं हैं। ५. सर्वज्ञ हैं। ६. प्राणियों पर अनुग्रह करनेके लिए ही मनुष्य शरीर धारण करते हैं। ७. अपुनरावृत्ति-रूप मोक्ष फलके दाता हैं, इत्यादि। उपनिषद्के अन्तर्यामी ब्राह्मणमें इन्हींको अन्तर्यामी, अमृत, आत्मा कहा गया है। वाणी मनके साथ इनतक न पहुँच करके लौट आती है। यही जगद्-जन्मादिके कारण हैं। इन्हींको प्राप्त करके अनावृत्ति होती है। यही धर्म-संस्थापनके लिए युग-युगमें अवतार लेते हैं। उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र, गीता आदि ग्रन्थोंमें यह बात भलीभाँति दुहरायी गयी है। भगवान् भक्ति-गम्य है अर्थात् उनकी प्राप्तिमें एकमात्र भक्ति ही उपाय है। सन्तत-स्मरण और भक्त-वत्सल—इन दो पदोंका प्रयोग यह अभिव्यंजित करता है कि प्रीतिरूप अनुध्यान ही भक्ति शब्दका अर्थ है। यदि सूक्ष्म दृष्टिसे गवेषणा की जाय तो इस प्रकरणसे यह सिद्ध होगा कि समग्र काव्य ही उप-निषत्-प्रतिरूपक है। अवतार-रहस्य साधु-परित्राण-रूप गीतार्थको दृढ़ करता है। काव्यके प्रारम्भमें ही 'श्रियः पतिः' कहना उपास्यके स्वरूपकी सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति है।

कवि मानो सम्प्रदाय परम्परागत व्याख्याको सिद्धान्तित करनेके लिए

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपनिषदर्थका विवरण करना चाहता है। प्रथम सर्गमें नारदागमनका वर्णन करते हुए श्रीकृष्णका इस प्रकार चित्रण है—

निदाघधामानमिवाधिदीधितिं
मुदा विकासं मुनिमभ्युपेयुषी।
विलोचने बिभ्रदधिश्रितश्रिणी
स पुण्डरीकाक्ष इति स्फुटोऽभवत्॥

(१।४४)

देवर्षि नारदको रश्मिमाली भगवान् भुवन-भास्करके समान आकाशसे अवतीर्ण होते देखकर श्रीकृष्णके नेत्रकमल अत्यन्त सुषुमा-सम्पन्न होकर आनन्दसे विकसित हो गये। सचमुच उनकी 'पुण्डरीकाक्ष' संज्ञा आज लोगोंके सामने प्रकट होकर दीखने लगी।

यहाँ स्पष्ट मालूम पड़ता है कि पुण्डरीकाक्ष कहते समय उपनिषद्का 'यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी'—यह मन्त्र माघके ध्यानमें है और वे बुद्धिपूर्वक उसके अर्थका विवरण कर रहे हैं। 'कप्यास' शब्दका जो अन्यपरक अर्थ प्रचारपथमें लाया गया, वह माघके समयमें नहीं था—यह हम बलपूर्वक कह रहे हैं। वेदान्ती माघ गुरु-शिष्य-परम्पराके क्रमसे प्राप्त श्रौत अर्थको ही स्पष्ट कर रहे हैं। वाक्यकार ब्रह्मनन्दीने उपनिषद्का विवरण करते समय जिन तीन योजनाओंको स्वीकार किया है, उनमें-से माघने एकको स्वीकृत एवं प्रमाणित किया है। निष्पक्ष विद्वान् इसको समझ सकते हैं। यह योजना माघको पूर्णरूपसे परम वेदान्ती सिद्ध करती है।

इस प्रकार माघ अपने समयके परम्परा-प्राप्त शास्त्र-वैदुष्यको अपने काव्यमें प्रकट करते हैं धन्य है माघ कविका विभव।

• • •

'क्षणने कणसे कहा—मैं तुम्हें, खा रहा हूँ।'

कणने कहा—'तुम मुझे खा जाओ, तुम भी तो भूतके भोजन बन गये।'

• •

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

याचना अच्छी या विष पीना

महाराजाधिराज मुम्मडिकृष्ण (मैसूरु)की सभामें एक नवीन कविका शुभागमन हुआ। उसकी कवितासे राजा, सभा—सब सन्तुष्ट हुए परन्तु उसको कुछ धन नहीं दिया। राजाने विचार किया कि कवि कुछ माँगे तब देंगे। अपने अन्तरंग मित्रोंके बीचमें अपना यह विचार प्रकट भी कर दिया। यह बात कर्णाकर्णि फैलकर कवितक पहुँच गयी। स्वाभिमानी कविने भी इस सम्बन्धमें राजाके प्रबोधनका उपाय निश्चित कर लिया।

एकदिन कवि और राजा—दोनों साथ-साथ भगवान् शंकरके मन्दिरमें गये। राजाके संकेतपर कविने शंकरसे प्रार्थना की—

हर ! हर ! पुरहर ! परुषतरं वद हालाःहल फल्गुयाचनावचसोः।
एकैव तवरसज्ञा तदुभयरसतारतम्यज्ञा ॥

हे हर ! हे हर ! हे त्रिपुर हर ! कृपा करके यह बताइये, कि हालाहल विष और याचनाकी क्षुद्र वाणी—इन दोनोंमें अधिक कड़वा कौन है ? क्योंकि इस सारी सृष्टिमें एक तुम्हारी जिह्वा ही दोनोंके रसकी न्यूनाधिकता पहचानती है।

कहनेका अभिप्राय यह है कि शंकरजीने कालकूट विषका पान भी किया है और प्रतिदिन भिक्षा भी माँगते हैं, इसलिए दोनोंका रस जानते हैं। और किसीने कालकूट विष कभी पीया नहीं, पीता तो मर जाता। अतः वही निर्णय दे सकते हैं कि विष पीना अच्छा है अथवा किसीसे कुछ माँगना ?

राजा कविका भाव समझ गया कि किसीसे कुछ माँगना विषसे भी अधिक कटु है। अतः बिना माँगे ही उसने कविको बहुत-सा धन दे दिया।

['सुधर्मा' संस्कृत-दिनपत्रिका-मैसूरसे साभार]

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सिद्धोंकी गाथाएँ

(१)

जो ईमानदारीसे सच्चाईके मार्गपर चलता है,
वह दुनियाँकी गलतियोंको नहीं देखता,
यदि हम दूसरोंके दोष देखते हैं,
तो हम स्वयं भी गलत हैं ।
यदि दूसरे पुरुष गलतीपर हैं,
तो उसपर ध्यान नहीं देना चाहिए,
क्योंकि दूसरोंके दोष देखना हमारे लिए गलत है ।
दोष ढूढ़नेकी आदतसे पीछा छुड़ाकर,
हम अपवित्रताके एक स्रोतको बन्द कर देते हैं,
जब न घृणा और न प्रेम,
हमारे मनको विक्षुब्ध कर सकते हैं,
तो हम गहरी शान्तिमें सोते हैं ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(२)

साक्षात्कार, निन्दा और स्तुति दोनोंसे परे हैं,
अन्तरिक्षके समान यह सीमाएँ नहीं जानता,
जहाँ भी तुम खड़े हो,
यह तुम्हें घेरे हुए है,
परन्तु यदि तुम इसे खोजो,
तो तुम इस तक नहीं पहुँच सकते,
तुम्हारा हाथ इसे पकड़ नहीं सकता,
तुम्हारा मन इसे अलग नहीं कर सकता,
जब तुम
इसे खोजना बन्द कर देते हो,
तो यह तुम्हारे साथ है;
मौनमें तुम इसे जोरसे बोलते हो,
बोलनेमें तुम इसके मौनको प्रकट करते हो,
इस प्रकार करुणाका द्वार
सब प्राणियोंके हितके लिए
खुलता है ।

('ध्यान-सम्प्रदाय'से)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ऋग्वेदमें सरस्वतीका मानसिक रूप

डॉ० मुहम्मद इसराइल खाँ

संस्कृत विभाग, अलीगढ़ विश्वविद्यालय, अलीगढ़

ऋग्वेदमें सरस्वतीके लिए कतिपय ऐसे विशेषणोंका प्रयोग पाया जाता है जिनसे उसका बौद्धिक सम्बन्ध प्रकट होता है। ऐसे विशेषणोंमें 'धियावसुः', 'चोदयित्री सुनृतानाम्' तथा 'चेतन्ती सुमतीनाम्' विशेष उल्लेखनीय हैं।

(अ) धियावसुः

इस विशेषण शब्दका प्रयोग सम्पूर्ण ऋग्वेदमें सरस्वतीके लिए केवल एक बार हुआ है[1]। सायणाचार्यकृत इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

"धियावसुः कर्मप्राप्यधननिमित्तभूता। वाग्देवतायास्तथाविधं धननिमित्तत्वमारण्यककाण्डे श्रुत्या व्याख्यातम्– यज्ञं वष्टु धियावसुरिति वाग्वै धियावसुः' (ऐत. आ. १. १. ४) इति।"

यहाँ सायण सरस्वतीको वाग्देवता मानते हैं। आरण्यकानुसार यह वाग्देवता धनका कारणभूत है। आरण्यककृत इस व्याख्यासे अनुप्रेरित होकर सायणने भी 'धियावसुः' शब्दकी व्याख्या 'कर्मप्राप्यधननिमित्तभूता' की है। कर्मसे उनका अभिप्राय सम्भवतः 'यज्ञ' है। क्योंकि यज्ञमें मन्त्रोंका उच्चारण करनेसे वाग्देवताका एक प्रकारसे शंसन होता है तथा उस शंसनसे उनका प्रीतिकरण होता है। इस प्रकार यज्ञसे सन्तुष्ट हुई वाग्देवता अपने प्रस्तोताको धनसे अनुगृहीत करती

१. ऋग्वेद १।३।१०

'पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धिया वसुः ॥'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
है। इस कथनकी पुष्टि ग्रीफिथ्के शब्दोंसे की जा सकती है। वह 'धियावसुः'को सरस्वतीका विशेषण स्वीकार करते हुए उसे 'धन द्वारा पूजनका प्रतिफलदात्री' स्वीकार करते हैं। श्रीमाधवके अनुसार शब्दका अर्थ—'प्रज्ञया सर्वेषां वासयित्री' है—अर्थात् 'धियावसुः' वह है जो अपने ज्ञानसे सबको वासित अथवा प्रकाशित करती है।

इससे भिन्न भी शब्दकी व्याख्या विभिन्न प्रकारसे की गयी है। यास्कके निरुक्तमें इस शब्दका पर्याय 'कर्मवसुः' मिलता है। स्कन्दस्वामीके ऋग्वेद भाष्यमें यह शब्द इस प्रकार व्याख्यात है :

"प्रज्ञाधना। अथवा वसेराच्छादनार्थस्य वसुशब्दः। प्रज्ञया छादयित्री सर्वार्थानाम्[1]।"

यह शब्द ऋग्वैदिक साहित्यमें अपना एक विशिष्ट अभिप्राय रखता है। अतएव यह आवश्यक है कि शब्दकी रचना-प्रक्रियापर ध्यान दिया जाय। 'धियावसुः' शब्द 'धिया' एवं 'वसुः' पदोंके संयोजनसे बना है। 'धिया' स्त्रीलिङ्ग 'धीः'का तृतीयान्त एकवचन है। 'धीः'का अर्थ ज्ञान अथवा बुद्धि है[2]। वसुः शब्द वस्-उन् से निष्पन्न है तथा इसका अर्थ 'सम्पन्न' अथवा 'अच्छा' होता है।[3] शब्द-निष्पत्तिकी दृष्टिसे सरस्वतीको 'धियावसुः' कहनेसे अभिप्रेत यह है कि वह बुद्धि अथवा ज्ञानसे सम्पन्न है। उस मन्त्रमें जिसमें कि 'धियावसुः' शब्दका प्रयोग हुआ है, सरस्वतीको वाग्देवता मानकर यज्ञमें उसका आवाहन सम्भवतः इस दृष्टिसे किया गया है कि वह मन्त्रोच्चारणमें सहायता प्रदान करे तथा अपने ज्ञानसे भक्त-जनोंके मस्तिष्कका द्योतन करे। यदि वह मस्तिष्कको प्रतिस्फुरित करती है, तो ज्ञानोत्पत्ति अवश्यमेव होगी।

'वसुः' शब्दका एक अन्य अर्थ 'चमकनेवाली' भी है। क्योंकि 'वसुः' शब्दकी निष्पत्ति वस् = चमकना—इस प्रकार की गयी है। शब्दका भिन्नार्थ 'सूर्य', 'प्रकाश-किरण', 'प्रकाश' तथा 'चमक'से भी है।[4] 'धियावसुः' कर्त्ता-कारक एक

---

१. तुलना कीजिए—माधव, ऋगर्थदीपिका ऑन ऋग्वेदसंहिता (मोतीलाल बनारसीदास १९३९), भाग–१, टिप्पणी २, पृ० १८।

२. वमन शिवराम आप्टे प्रैक्टिकल संस्कृत-इंग्लिश डिक्शनरी, (पूना, १८९०), पृ० ५९७।

३. वही, पृ० ९५१।

४. वही, पृ० ९५३

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

वचनका विशेषण है। यहाँ सरस्वती ही कर्त्ता है; वह स्वयं ही 'धियावसुः' होनेसे ज्ञान-रूपी सूर्य अथवा ज्ञान-किरणसे द्युतिमती है।

(ब) चोदयित्री सूनृतानाम्

इस विशेषणका प्रयोग समग्र ऋग्वेदमें सरस्वतीके लिए केवल एक वार किया गया है।[1] 'चोदयित्री' शब्द वैदिक होता हुआ भी वादके साहित्यमें इसी रूपमें प्रयुक्त हुआ है।

उपर्युक्त प्रयोगमें स्वतन्त्र इयत्ताकी—'चोदयित्री' एवं 'सूनृतानाम्' दो इकाइयाँ हैं। प्रथम पद √चुद् (= प्रेरणा देना अथवा उसकाना) से वना है[2]। इसी धातुसे निर्मित स्त्रीलिङ्ग-रूप चोदयित्री है, जो 'प्रेरणा देनेवाली' अर्थकी अभिव्यक्ति करता है। इस 'चोदयित्री'को एक अन्य वैदिक रूप 'चोदति'से स्थापन्न किया जा सकता है[3]। श्रीसायण, माधव, विल्सन एवं ग्रीफिथ 'चोदयित्री' शव्दका अर्थ क्रमशः 'प्रेरयित्री', 'चोदयित्री', 'इन्सपायरर' एवं 'इन्साइटर' करते हैं।

अर्थात् सरस्वती अपने व्यक्तित्वसे शोभन बुद्धियुक्त मनुष्योंके कार्यका वोधन करती है। विल्सन एवं ग्रीफिथ्के अनुसार वह (सरस्वती) 'शोभन बुद्धिवालेको बुद्धिका दिग्दर्शन करानेवाली' अथवा 'सुन्दर विचारोंको स्फुरित करनेवाली है।' 'सुमतीनाम्' शब्द 'सु' उपसर्गपूर्वक 'मतिः'से निष्पन्न है। 'मतिः' में √मन् = सोचना तथा स्त्री प्रत्यय 'क्तिन्' है।[4] इस प्रकार स्त्रीलिङ्ग 'मतिः' शव्द सूक्ष्म भाव—यथा अववोध, ज्ञान एवं मस्तिष्कका पर्याय (वाचक) है।[5] संक्षेपमें 'सुमतीनाम्' का भाव सुन्दर भावों अथवा सुन्दर मतिवाले मनुष्योंके सुविचारोंसे है। चूँकि सरस्वती उनका भावन करती है, अतएव वह या तो वाग्देवी है अथवा स्वयं वाग्रूप है।

---

१. ऋ० १।३।११
"चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती ॥"
२. मोनियर विलियम्स, ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी (आक्सफोर्ड, १८२७), पृ० ३२७
३. वही, पृ० ३२७
४. पाणिनी, अष्टाध्यायी, ३।३।९४, "स्त्रियां क्तिन्"।
५. वमन, शिवराम आप्टे, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ८३४।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(ख) कुछ अन्य संकेत

ऋग्वेदके मन्त्रोंमें हमें यत्र-तत्र कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं जिसमें सरस्वतीका आवाहन प्रज्ञा अथवा बुद्धि प्रदानार्थ किया गया है।[1] एक मन्त्रमें सरस्वतीको ज्ञानागार (महो अर्णः) कहा गया है; वह अपने इस ज्ञान (केतुना) से सम्पूर्ण विश्वको प्रभावित (प्रकाशित) करती हुई अधिष्ठित है।[2] श्री अरविन्द 'केतु' का अर्थ 'दैवी सविकल्पक ज्ञान' मानते हैं।[3] यास्कके अनुसार 'केतुना' का अर्थ 'कर्म' अथवा 'बुद्धि' है।

"महद्र्णः सरस्वती प्रचेतयति प्रज्ञापयति केतुना कर्मणा प्रज्ञया[4]।" 'धियो विश्वा वि राजति'की व्याख्यामें सायण कहते हैं कि सरस्वती अपनी प्रज्ञाका प्रकाशन पर-ज्ञान तथा कर्म-प्रकाशन द्वारा करती है :

"स्वकीयेन देवतारूपेण विश्वाः धियाः सर्वाण्यनुष्ठातृप्रज्ञानानि वि राजति विशेषेण दीपयति। अनुष्ठानविषया बुद्धिः सर्वदोत्पादयतीत्यर्थः।"

वह सबके कार्योंका अवबोधन कराती है। उससे प्रार्थना की गयी है कि वह हमें बुद्धि दे।[5] क्योंकि वह ही एकमात्र बुद्धिमानोंकी रक्षिका है।[6]

---

१. ऋ० २।३।८।

"सरस्वती साधयन्ती धियं न इळा भारती विश्वतूर्तिः।
तिस्रा देवीः स्वधया बर्हिरेदमच्छिद्रं पान्तु शरणं निषेद्य।"

२. ऋ० १।३।१२।

"महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना।
धियो विश्वा वि राजति ॥"

३ श्री अरविन्द, पूर्वोद्धृत ग्रन्थ, पृ० ११६।

४. निरुक्त ११।२७

५. ऋ० ६।४९।७

"पावीरवी कन्या चित्रायुः सरस्वती वीरपत्नी धियं धात्।
ग्नाभिरच्छिद्रं शरणं सजोषा दुराधर्षं गृणते शर्म यंसत् ॥"

६. ऋ० ६।६१।४

"प्र णो देवी सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती। धीनामवित्र्यवतु।"

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संक्षेपमें उपरोक्त पंक्तियोंमें सरस्वतीके कतिपय चुने ऋग्वैदिक विशेषणों द्वारा उसके मानसिक तथ्यपर एक सुसंयत परन्तु संक्षिप्त विचार-विमर्श प्रस्तुत किया गया है। प्रकृत लेखमें मुख्य रूपसे दो बातोंपर बल दिया गया है।

(अ) सरस्वतीका क्या स्वरूप है? कौन-से विशेषण उसके किस अङ्गको प्रदर्शित करते हैं।

(ब) वह अपने इस स्वरूप द्वारा दूसरोंको कैसे लाभान्वित करती है।

●●●

कब मिलोगे ?

एक दिन भक्तने आकुल-व्याकुल हृदयसे अपने प्रभुको पुकारा—"कब मिलोगे? कहाँ मिलोगे? कैसे मिलोगे? किस रूपमें मिलोगे? तुम्हारे बिना मेरे प्राण तप रहे हैं।"

शरीररहित वाणीके उपेक्षापूर्ण स्वर मानो समग्र आकाशमें गूँज उठे—"कभी, कहीं, जैसे कैसे, किसी भी रूपमें मिल लेंगे।"

भक्त आर्त होकर चीख उठा—"मेरे प्राण! इतनी उपेक्षा क्यों? ठीक-ठीक समय, स्थान, साधन और रूप क्यों नहीं बताते?"

प्रभुके अट्टहाससे दसों दिशाएँ मुखरित हो उठीं—मेरे भोले भक्त! मैं जो अभी हूँ, यही हूँ, ऐसा ही हूँ—सो तो तुम्हें पसन्द नहीं। तुम और कुछ चाहते हो। क्या तुम इससे नहीं, तो उससे प्यार कर सकोगे?

वाणीने और गम्भीरतासे निर्देश किया—"अभी पा लो—सदा साथ रहूँगा। यहीं देख लो—सर्वत्र दिखूँगा? ऐसे ही समझ लो—समझमें मैं ही रहूँगा। देखो-देखो। मैं जो हूँ, वही सब है। जो अभी नहीं, वह कभी नहीं, न पहले न पीछे।"

भक्त आश्चर्यचकित होकर उस प्रभुको देखने लगा। क्या सदा, सर्वत्र, सर्वथा और सर्वके रूपमें उपलब्धि-मात्र ही है?

●●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

● पण्डितवर श्री पी० एन०
पट्टाभिराम शास्त्री

साहित्यविभागाध्यक्ष—
वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय

★●★

लोक-व्यवहारमें अपने अभिलषित मनोरथ अथवा पुरुषार्थकी सिद्धि चाहनेवाले मनुष्योंके लिए प्रवानतम साधन हैं—दैव और पुरुषकार। यह बात किसीसे छिपी नहीं है। ये दोनों परस्पर मिलकर साधन हैं या पृथक्-पृथक्? देवता प्रबल है या पौरुष? इस अनादि संसारमें चिरकालसे इन विषयों-पर मतभेद चले आरहे हैं। प्रज्ञावान् प्राचीन महर्षि भी जिन्होंने दर्शन, स्मृति, पुराण आदिका प्रवर्तन किया है वे भी इस विषयमें एकमत नहीं हैं। भिन्न-भिन्न मतोंके प्रवर्तक आचार्य भी परस्पर विवाद करते हैं।

इस विषयपर प्रायः चार पक्ष प्राप्त होते हैं। किसी-किसीका कहना है कि दैव प्रधान है। वे उसीपर सारा भार डालकर उसके अंगरूपमें पुरुषकारपर आस्था

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

करते हैं। दूसरा मत ऐसा है कि पुरुषकार ही प्रधान है, दैव गौण। तीसरा मत है कि देवताको दूर करो, पुरुषकार ही सब कुछ है। चौथा मत यह है कि पौरुष तुच्छ है और देवता अथवा दैव ही प्रधानतम कारण है।

इसमें सन्देह नहीं कि श्रुति, स्मृति, पुराण एवं काव्योंमें ऐसे-ऐसे वचन मिल जायँगे जिनसे इन परस्पर-विरुद्ध मतवादोंकी पुष्टि हो जाय। उदाहरणार्थ—'जैसा कर्म करता है, वैसा हो जाता है।', 'होता है वही जो विधाताके मनमें है।', 'दैवका आश्रय लेकर प्रयत्न नहीं छोड़ना चाहिए।', 'विना परिश्रमके क्या तिलसे तेल निकलेगा?', 'भाग्यपर सब कुछ छोड़कर बैठ जाओ, भटकनेमें क्या रखा है?', 'जो पौरुष छोड़कर दैव अथवा भाग्यका भरोसा करता है वह पत्थरका शेर है, उसके सिर कौवे बैठेंगे।'

ऐसी परिस्थितिमें क्या निर्णय लेना चाहिए? प्रश्न गम्भीर है। पूर्वमीमांसाके अनुसार इस विषयका हम परिशीलन करते हैं और उसीका आश्रय लेकर देवताके स्वरूपका भी कुछ निरूपण करते हैं।

वेदके ही दूसरे नाम हैं—श्रुति, आम्नाय आदि। वे मनुष्योंके प्रति सहस्र-सहस्र माता-पिताकी अपेक्षा भी अधिक वात्सल्य रखते हैं। वे मनुष्योंको सुखपूर्वक अभीष्ट फल प्राप्त हो जाय इसके लिए सुगम और कठिन—दोनों ही प्रकारके कर्म वर्णाश्रमादिके अनुरूप विधान करते हैं। उन कर्मोंका ठीक-ठीक अनुष्ठान करनेपर अधिकारी कर्ता अपने-अपने अभीष्ट फलके उपभोग करनेके योग्य हो जाते हैं। सभी शब्द-प्रामाण्यवादी इस सिद्धान्तको असंदिग्ध-रूपसे स्वीकार करते हैं। अब प्रश्न यह है कि यह फलोपभोगकी योग्यता कर्ताके साथ किस प्रकार सम्बद्ध होती है? क्या याग, दान, होम, पूजा आदि वेद-विहित कर्मोंसे भली-भाँति आराधना करनेपर इन्द्रादि देवता प्रसन्न होते हैं और कर्ताको उसकी योग्यताके अनुसार फल देते हैं अथवा देवताके प्रसादके बिना ही शास्त्रविहित कर्म अपने-अपने अपूर्वके द्वारा कर्ता पुरुषोंको फलोपभोगके योग्य बना देते हैं? यदि देवताकी प्रसन्नताके विना ही केवल कर्म ही अपूर्वके द्वारा फल देनेमें समर्थ हैं तो मानना पड़ेगा कि मनुष्यका पुरुषकार अथवा पौरुष ही प्रधान है, देवता एक गौण वस्तु है। यदि कर्म आराधनाके द्वारा केवल देवताओंको प्रसन्न करनेके लिए ही हैं और कर्माराधनसे

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रसन्न होकर देवता ही फल देते हैं तो देवताओंकी प्रधानता हुई, मनुष्योंका प्रयत्न गौण हो गया। ऐसी स्थितिमें सिद्धान्त क्या है? चिरकालसे ही यह संशय-प्रवाह जागरूक रहा है।

इस सम्बन्धमें कई विचारकों-का ऐसा कहना है—जैसे किसी गृहस्थके घरमें समागत अतिथिको पाद्य, अर्घ्य, भोजन आदिके द्वारा सन्तुष्ट और प्रसन्न किया जाता है, इसीप्रकार जो लोग देवताकी प्रसन्नता प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिए वेदने यागादि क्रियाका साधनके रूपमें वर्णन किया है। उससे सन्तुष्ट एवं तृप्त होकर देवता फल देते हैं। 'यज्' धातु जिससे यज्ञ-याग शब्द बनते हैं, देवपूजा, संगतिकरण और दानके अर्थमें प्रसिद्ध हैं। पूजनीय प्रधान होता है, पूजा गौण होती है, यह निर्विवाद है। अतः यज्ञ-यागादिरूप पूजा-कर्म पूजनीय देवताकी अपेक्षा गौण ही स्वीकार करना पड़ेगा। यज्ञमें तीन पदार्थ होते हैं—द्रव्य, देवता और त्याग। जिसके लिए हविष्यका त्याग होता है, उसको देवता कहते हैं। त्यज्यमान हविका उद्देश्य होना ही देवतापन है। हविर्दानमें देवता सम्प्रदान है जैसे इन्द्राय, यह चतुर्थी सम्प्रदान है। जिसके लिए कर्म होता है वह सम्प्रदान होता है। इस प्रकार कर्म-कारककी अपेक्षा सम्प्रदान कारक देवताको श्रेष्ठ स्वीकार करना चाहिए। जब हम देवताको प्रधान स्वीकार कर लेते हैं तब यह भी सिद्ध हो जाता है कि पूजा पूज्यमानकी प्रसन्नताके लिए होती है जैसे गुरुकी प्रसन्नताके लिए गुरुपूजा। यज्ञ पूजा है। उसका उद्देश्य देवताको प्रसन्न करना है। वही फल देता है। इसप्रकार लौकिक रीतिका अनुसरण भी हो गया। श्रुति-स्मृतियोंमें अनेक ऐसे वचन मिलते हैं जिनसे देवताकी प्रधानता सिद्ध होती है—जैसे, देवता हमारे हविष्यका भोग लगायें; यजमान देवताओंके लिए जो हवन करता है, देवता उसका भोग करते हैं; इन्द्र तृप्त होकर यजमानकी मनोरथ-पूर्तिके द्वारा उसे तृप्त करता है; मैं आहुतियोंके द्वारा देवताओंको तृप्त करता हूँ; देवता और मनुष्य परस्पर भावित होकर कल्याण प्राप्त करते हैं। इन वचनोंसे मन्त्र, अर्थवाद, इतिहास, पुराण—सबकी संगति लग जाती है कि यज्ञ-यागसे देवता प्रसन्न होते हैं और उनकी प्रसन्नतासे फलकी प्राप्ति होती है। वेदोंमें ऐसे अनेक मन्त्र मिलते हैं जिनमें देवताओंकी विग्रहवत्व हविष्य भोग, ऐश्वर्य, प्रसन्नता और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फल-दातृत्वका वर्णन है। इन्द्रके बाहु और वज्रका भी वर्णन मिलता है। उनके श्रवण और पानका भी स्पष्ट उल्लेख है। विग्रहादि पाँच पदार्थ मीमांसाशास्त्रमें अतिशय प्रसिद्ध हैं।

इससे सिद्ध हुआ कि यज्ञ-यागादिके द्वारा चेतन देवताकी आराधना होती है। वे यज्ञीय हविष्य खाते हैं। उनसे तृप्त होकर यजमानको फल देते हैं। ऐसी स्थितिमें प्रधान देवताके प्रसादसे ही फलकी सिद्धि हो जाती है, तब एक अश्रुत—अपूर्वकी कल्पना करके यज्ञ-यागको ही स्वतन्त्ररूपसे फलजनक मानना उचित नहीं है। अतः यह मानना चाहिए कि देवताकी अपेक्षा पुरुषकार गौण है।

अबतक जो बातें कही गयीं देवता-प्रसादके सम्बन्धमें, उनको शबर स्वामी, कुमारिल भट्ट आदि मीमांसाके प्रकाण्ड पण्डित स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि 'यजेत स्वर्गकामः' यह अधिकार-वाक्य है। यह स्पष्ट कहता है कि यज्ञका फल स्वर्ग है। यज्ञ कैसे करना चाहिए ?—यह उत्पत्ति-वाक्यके द्वारा विहित है।

"यदाग्नेयोऽष्टाकापालोऽमावास्यायां पौर्णमास्याञ्चाच्युतो भवति।"

यह उत्पत्ति-वाक्य है। इसमें 'आग्नेय' इस पदसे जिसका अर्थ है—'पुरोडाश अग्नि देवताका है,' पुरोडाशकी अपेक्षा अग्निदेवता गौण प्रतीत होते हैं। द्रव्य और देवताके सम्बन्धसे कल्प्यमान याग उनके अनुरूप ही कल्पित होता है। अग्निदेवताक अष्टाकपाल पुरोडाश द्रव्यक याग होता है—इस प्रकारका याग अधिकार-वाक्यमें 'यजेत' के द्वारा कहा गया है; इसलिए त्यागांशके प्रति देवता गौण है, प्रधान नहीं। प्रधान माननेपर उत्पत्ति-वाक्यगत गौण-भावसे विरोध होगा। ऐसा स्वीकार नहीं करेंगे तो उत्पत्ति-वाक्यमें त्यागांशके प्रति देवता गौण हो जायगा और अधिकार-वाक्यमें त्यागात्मक याग देवताके प्रति गौण हो जायगा। इस प्रकार दोनोंमें विरोध पड़ेगा। अतः जिस रीतिसे उत्पत्ति-वाक्यमें देवताका भान होता है, उसी रीतिसे सर्वत्र तद-विरोधी देवताका भान स्वीकार करना चाहिए। इसमें भी यह ध्यान रखने योग्य है कि इस कर्ममें यह देवता है, इस प्रकारका ज्ञान विधिसे ही प्राप्त किया जा सकता है, दूसरे उपायसे नहीं; जैसा कि भट्टपादने कहा है—

विधिनैव हि देवत्वं
प्रतिकर्मावधार्यते।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न जात्या देवतात्वं हि
क्वचिदस्ति व्यवस्थितम् ॥
(त० वा०)

'प्रत्येक कर्ममें विधि-वचनसे ही देवताका निश्चय होता है। कहीं भी जातिसे देवतात्व व्यवस्थित नहीं है।'

यह विषय जैमिनि-सूत्र (१०।४।२३)में अत्यन्त स्पष्टतासे भाष्यकार, वार्तिककार आदिने प्रति-

है ? यह सन्देह उठाकर पहले पूर्वपक्ष उपस्थित किया गया है।

पूर्वपक्ष—यदि कर्मानुष्ठान-प्रसंगमें केवल शब्द ही देवता है तब तो यह नियम हो सकता है कि मन्त्रोच्चारण अथवा स्वाहाकारके समय केवल विधिगत शब्दका ही उच्चारण किया जाय। परन्तु शब्दको देवता माननेपर भी प्रश्न यह है कि उस शब्दका कुछ

जब मुझे जगत्की आवश्यकता थी, तब मैं एक जन्तु हो गया था। जब मुझे यह अनुभव हुआ कि जगत्को मेरी आवश्यकता है—मेरी सत्ता, प्रकाश और प्रियतासे जगत् अनुगृहीत है; तब मैं अनुगृहीतके परिमाणानुसार जीव या ईश्वर बनकर अहंकारके शिखरपर जा बैठा।

जब मैंने अनुभव किया कि दोनों, दोनोंके आश्रित, दोनों, दोनोंसे अनुगृहीत और परस्पर सापेक्ष हैं, तब इदं और अहम् दोनोंके बन्धनसे मुक्त अपने स्वतःसिद्ध स्वरूपमें प्रतिष्ठित हो गया। और वे दोनों अपनेको एकबार शून्य दिखाकर मुझसे अपृथक् हो गये।

पादन किया है। वहाँ यह प्रश्न उठाया गया है कि 'आग्नेय अष्टाकपाल' इत्यादि स्थलमें विधिगत देवता शब्दका ही निगम और हविष्त्याग आदिमें प्रयोग करना चाहिए। अथवा पर्याय शब्दका भी प्रयोग किया जा सकता है ? अर्थात् क्या 'अग्नि'के स्थानपर 'वह्नि', 'पावक', 'शुचि' आदि शब्दोंका प्रयोग किया जा सकता

अर्थ है या नहीं ? यदि नहीं है तो लोक और वेद अग्नि आदि शब्दोंका जो अर्थ प्रसिद्ध है उसीका व्याघात हो जायगा। यदि शब्दका अर्थ ही न हो तो उसकी प्रातिपदिक संज्ञा कैसे होगी और फिर विभक्ति आदिका सम्बन्ध कैसे जुड़ेगा ? अच्छा, यदि यह मान लें कि उन शब्दोंका अर्थ है तो वे अर्थ ही देवता हैं—यह सिद्ध हो

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जायगा और फिर मन्त्रोच्चारणमें या स्वाहाकारमें केवल विधिगत पदोंका ही प्रयोग किया जाय, इस प्रकारके नियममें कोई प्रमाण सिद्ध नहीं होगा। जिस हविष्यका हवन किया जा रहा है, उसका उद्देश्यरूप देवता यद्यपि अर्थ नहीं हो सकता; क्योंकि द्रव्यत्याग-कालीन उच्चारणका कर्म होनेके कारण वह शब्दधर्म ही है तथापि केवल उच्चारण-घटितत्व ही उद्देश्य है, इसमें कोई प्रमाण न होनेके कारण द्रव्यत्यागकालीन ज्ञानकी कर्मता ही देवतात्व है। इस अर्थके सिद्ध हो जानेपर भी कोई दोष नहीं है। अतः अर्थको स्वीकार करके यदि शब्दको देवता मानते हैं तो अर्थको ही प्रधान और देवता मानना चाहिए। यह बात श्री कुमारिल भट्टने कही है—'अर्थके प्रति शब्द अत्यन्त गौण है, प्रधान होनेके कारण अर्थ ही कार्योपयोगी है। अग्नि शब्द स्वयं कार्य और द्रव्यके साथ सम्बद्ध नहीं होता। तब क्या होता है? अर्थ ही सम्बन्ध होता है। सभी निर्देश अर्थपरक होते हैं। अतः 'अग्नि'के स्थानपर वह्नि, पावक आदि शब्दोंका प्रयोग भी किया जा सकता है। ऐसी स्थितिमें केवल 'अग्नि' शब्दका ही प्रयोग किया जाय—यह नियम अनुचित है' (त० वा०)। इससे यह सिद्ध हुआ कि अर्थ ही देवता है और वेदोंमें विधिगत शब्दोंके प्रयोगका ही नियम नहीं है।

सिद्धान्त—बिना उच्चारणके केवल ज्ञानमात्रसे अर्थका देवता होना युक्तियुक्त नहीं है। यदि केवल अर्थ ही देवता होता तो वेदमें 'अग्नये पावकाय', 'अग्नये शुचये' इत्यादि स्थलमें दो पदोंका प्रयोग न होता; क्योंकि एक ही पदसे अर्थका विधान हो जाता। ऐसी स्थितिमें दो पद व्यर्थ होते। पुराण आदिकी पर्यालोचना करनेपर यह तो निकल आता है कि पावक-शुचि आदि पद अग्नि-विशेषके वाचक हैं तथापि उसी पदके प्रयोगसे अग्नित्व समानाधिकरण विशेष धर्मकी उपस्थिति हो जानेके कारण अर्थ सम्पन्न हो जाता, पुनः 'अग्नि' पदके प्रयोगकी आवश्यकता न रहती। शिष्टाचारकी यह मर्यादा है कि देवताके उद्देश्यसे द्रव्यत्याग (हवन) करते समय शब्दोच्चारण अवश्य करना चाहिए! "देश, कालादिका संकीर्तन करके और अपने नामगोत्रका उच्चारण करके 'अमुक देवताके लिए हविष्य दे रहा हूँ', इस प्रकार श्रद्धायुक्त होकर हवनादि करना चाहिए। 'यह देवताके लिए है, मेरा नहीं' इस प्रकार 'न मम' कहकर अपनी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्ताकी निवृत्ति भी बोलना चाहिए। सर्वदा श्रद्धासे युक्त होकर दान-होमादि करना चाहिए।" इस वृद्ध वसिष्ठके वचनकी संगति भी लग जाती है।

इसलिए जो लोग केवल अर्थको ही देवता मानते हैं, उनके मतमें हविष्य त्यागकालीन उच्चारणके कर्मीभूत शब्दके द्वारा प्रतिपाद्य होना ही देवताका स्वरूप सिद्ध होता हैं। परन्तु इस मतका खण्डन पहले ही किया जा चुका है कि एक ही पदके द्वारा अर्थका विधान सम्भव होनेपर भी दो पदोंका प्रयोग व्यर्थ हो जायगा, इसलिए अर्थ-देवतावाद दूषित है। यह भी ध्यान रखने योग्य है कि यदि त्यज्यमान द्रव्यका उद्देश्यत्व ही देवतात्व है—यह मान लें, अर्थात् उद्देश्यता-मात्रको ही देवतात्व स्वीकार कर लें तो प्रतिनिधिको भी देवता स्वीकार करना पड़ेगा। ऐसा करना जैमिनी-सूत्रके विरुद्ध है। देखिये, 'न देवताग्निशब्दक्रिय-मन्यार्थसंयोगात्' (६।३।१८)—इस सूत्रमें देवताके प्रतिनिधिका अभाव कहा गया है। वह अनुपपन्न हो जायगा; क्योंकि वहाँ विधिकी उपलक्षता भी स्वीकार करना है अर्थात् शब्द-विशेषके द्वारा उद्देश्यरूपसे जिसका विधान किया आता है उसको देवता कहते हैं। इस प्रसंगमें ऐसी शंका नहीं करनी चाहिए कि विधानसे देवता और देवताका विधान—इन दोनों वाक्योंमें अन्योन्याश्रय दोष है। सच तो यह है कि सत्य देवताका विधान नहीं है अर्थात् पहलेसे देवताका विधान नहीं है। शब्दोद्देश्यतामात्रसे देवताका विधान होता है,। पश्चात् वह देवता हो जाता है अतः अन्योन्याश्रय दोष नहीं है।

इस प्रकार लाघवसे यह सिद्ध हुआ कि हविष्य-त्यागके समय विहित शब्दोच्चारणका कर्म होना ही देवता होना है। पूर्वोपदिष्ट ज्ञानका कर्म होना देवतात्व नहीं है। साथ ही, त्यागकालीन उच्चारणके कर्मीभूत शब्दका प्रतिपाद्य भी देवता नहीं है; क्योंकि इन दोनों अर्थोंमें गौरव है। इस प्रकारके देवतात्वका ही 'आग्नेयः' इत्यादि उत्पत्तिवाक्यमें तद्धित प्रत्ययका अर्थ है। अतः प्रधानभूत देवतार्थके अनुरोधसे अग्न्यादि प्रातिपदिकोंमें शब्दलक्षणाको स्वीकार करके भी विधिके द्वारा देवतात्वका विधान किया जाता है। अर्थकी प्रतीति तो आनुषंगिक है। अर्थबोधक शब्दके द्वारा देवता-का प्रतिपाद्य होना गौण है, शास्त्रके द्वारा उसका विधान नहीं किया जाता। ऐसी स्थितिमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सर्वत्र शब्दका ही वाक्यार्थके साथ अन्वय होता है और हविष्यका हवन करनेके समय दूसरे शब्दोंका प्रयोग नहीं किया जा सकता।

यही कारण है कि मीमांसा-दर्शनके भाष्यकार श्रीशबरस्वामी जब देवताके स्वरूपको विशद करने लगते हैं तब प्रश्न उठाते हैं—यह देवता क्या है? इसके उत्तरमें 'एकं तावन्मतम्' साथ ही 'अपरं तावन्मतम्' इस प्रकार दो मतोंका उल्लेख करके उनमें अरुचि प्रकट करते हैं और उपसंहार इस ढंगसे करते हैं—फिर क्या है? क्या शब्द ही हविष्यके साथ सम्बद्ध होता है? और उस शब्दके सम्बन्धसे ही अर्थ भी देवता होगा? वस्तुतः शब्द हविष्यके द्वारा जिससे जिसके लिए सम्बद्ध होता है वही देवता है। शब्दमें कार्य असम्भव है इसलिए अर्थमें कार्य होगा। यहाँ तो यह विलक्षण है कि शब्दमें ही कार्य हो जाता है, इसलिए शब्दका प्रयोग देवतारूप अर्थके प्रत्यायनके लिए नहीं किया जाता। अभिप्राय यह कि शब्दोच्चारण ही धर्म है, वही अपूर्वद्वारा फलोत्पत्तिमें समर्थ है फिर बीचमें अर्थरूप एक पृथक् देवता स्वीकार करनेकी क्या आवश्यकता है?

वार्तिककारने इस भाष्यकी व्याख्या इस प्रकार की है—

'अग्नि' शब्द ही अष्टाकपालके साथ सम्बद्ध होकर अर्थतः उसके देवतात्वका प्रतिपादन करता है। उदाहरणके लिए, 'वैष्णवीमनुब्रूयात्' इस विधिके अनुसार बोली हुई ऋचा ऋगर्थका प्रतिपादन करती है। वहाँ ऋचाका अर्थ विवक्षित नहीं है; क्योंकि उसका उच्चारण एक कार्यके लिए किया जा रहा है। ठीक इसी प्रकार इस प्रसंगमें भी अग्निपदका अर्थ विवक्षित नहीं है। वह एक कार्यके लिए प्रयुक्त है। अभिप्राय यह है कि जो यजमान अर्थको अष्टाकपालके साथ सम्बद्ध करना चाहता है, उसे अर्थकी वाचक श्रुतिका उच्चारण करना चाहिए। परन्तु जो केवल अग्निश्रुतिको ही अष्टाकपालके साथ सम्बद्ध करना चाहता है, उसके लिए केवल श्रुतिके उच्चारणका ही विधान है, अर्थात् वह 'अग्नये' ऐसा उच्चारण करके अष्टाकपालका हवन कर दे। उसके लिए 'अग्नि' पदका अर्थ देवता है—यह केवल अनुवाद है; क्योंकि 'अग्नि' पदके उच्चारणसे ही उसका प्रयोजन सिद्ध हो गया, देखिये तन्त्रवार्तिक।

इसी प्रकार खण्डदेवाचार्यने भी 'न देवताग्निशब्दक्रियम्' इस छठे अध्यायके सूत्रमें 'देवताका प्रतिनिधि नहीं होता है'—यह सिद्ध

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

किया है। अन्तमें उन्होंने ऐसा प्रतिपादन किया कि "जब दार्शनिक अधिकरणकी रीतिसे विधिगत शब्द-विशिष्ट अर्थ अथवा तादृश शब्दमात्र ही देवता है—यह सिद्ध हो गया, तब अग्निके स्थानपर दूसरे शब्दके प्रयोगका प्रसंग ही कहाँ रहा ? दूसरे पर्यायवाची शब्दोंमें यह देवतात्व भला कहाँ हो सकता है ? जो हविष्य-त्यागके समय उच्चारण किये जानेवाले विधिगत शब्दमें समनियत अखण्डोपाधिरूप एवं वृद्ध-व्यवहार सिद्ध है। यदि किसी प्रकार अर्थका देवतात्व स्वीकार भी कर लिया जाय तो वहाँ भी विधिगत शब्दसे प्रतिपाद्यत्व समनियतको ही देवता स्वीकार करके प्रतिनिधिके अभावका समर्थन करना चाहिए।" इसका अभिप्राय यह है कि इन देवतावादी आचार्यके मतमें भी शब्दकी ही मुख्यता है, अर्थकी नहीं। एक शब्दके बदलेमें दूसरे शब्दका प्रयोग नहीं किया जा सकता।

इन प्रमाणोंका निष्कर्ष यह है कि शब्द-विशिष्ट अर्थ ही देवता है अथवा शब्दमात्र ही देवता है अर्थ देवता नहीं है। देवताके स्वरूपका ज्ञान प्राप्त करनेके लिए एकमात्र विधि ही शरण है। देवता यज्ञ-यागादि कर्मोंमें गौण है, प्रधान नहीं। इसमें सन्देह नहीं कि अर्थवाद, मन्त्र, पुराणादिमें देवता-विग्रहादि और उनके पुरुषाकार होनेका वर्णन है[1] तथापि जैसे विधिवाक्योंके अनुकूल वे हो जायँ, वैसे ही उनके तात्पर्यका वर्णन करना चाहिए, भले ही, उनके शक्यार्थका परित्याग ही क्यों न करना पड़े। यदि ऐसा नहीं किया जायगा तो मन्त्र-पुराणादिकोंकी प्रामाणिकता ही भंग हो जायगी। तात्पर्य यह है कि भलीभाँति अनुष्ठित होनेपर कर्म ही मनुष्यको फल देते हैं। कर्मसे अपूर्व और अपूर्वसे फल। इसमें देवताके प्रसादकी कोई अपेक्षा नहीं होती। इसलिए मनुष्यको अपने पुरुषकार अथवा पौरुषकी प्रबलता स्वीकार करनी चाहिए; देवता, दैव या भाग्यकी नहीं। भलीभाँति अनुष्ठित कर्म ही फलदायक है।

● ● ●

१. विग्रहो हविषां भोगः ऐश्वर्यञ्च प्रसन्नता।
फलदातृत्वमित्येते पञ्चकं विग्रहादिकम्॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जब भगवान्को प्रमाण देना पड़ा

निखिल निगमागमके पारदर्शी विद्वान् श्रीपराशर भट्टारक श्रीरंगक्षेत्राधिनाथ श्रीरंगनाथके अनन्य आराधक थे। उस दिन श्रीरङ्गनाथ भगवान्की उत्सव-मूर्तिका महाभिषेक हो रहा था। भक्त-वृन्द अमन्द आनन्दसे तुन्दिल होकर निर्निमेष नयनोंसे भगवान्के दिव्य मंगलमय सौन्दर्य-सुधा-माधुरीका आस्वादन कर रहा था। श्रीरङ्गनाथके स्नान-परिधानसे अनवरत बिन्दु-बिन्दु जल निःस्यन्द हो रहा था। रसवर्षी श्रीविग्रहकी सुषुमा अलौकिक थी। तुलसी मञ्जरीकी माला कण्ठ-प्रदेशकी ओर हृदयको बलात् आकृष्ट कर लेती थी। ललाट-मण्डलपर कस्तूरीका तिलक निराली छवि-छटा बिखेर रहा था। उसी समय श्रीरङ्गमन्दिरकी निस्तब्ध नीरवताको भङ्ग करके एक श्लोक मुखरित हुआ श्रीपराशर भट्टारकके मुखारविन्दसे—

त्वं मेऽहं मे कुतस्तत् तदपितव कुतो
वेदमूलप्रमाणात्
एतच्चानादिसिद्धादनुभवविभवात्
तर्हि सापेक्ष एव।
क्वाक्षेपः कस्य गीतादिषु मम विदितः
कोऽत्र साक्षी सुधीः स्यात्
हन्त त्वत्पक्षपाती स इति नृकलहे
मृग्यमध्यस्थवत्त्वम् ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

• विद्वान् वाजपेयं श्रीरङ्गाचार्य

अब आइये, इस श्लोकके हृदयमें प्रवेश करके रसास्वादन कीजिये।

भगवान्—प्यारे जीवात्मन्! क्या तुम जानते हो कि तुम कौन हो? किसके हो? तुम मेरे नियम्य हो। मेरे लिए मेरे शेष हो। मेरे दास हो और तुम मेरे हो।

जीव—अजी, मैं तो मेरा हूँ। मैं तुम्हारा हूँ—ऐसा तो नहीं जान पड़ता।

भगवान्—भला, तुम अपने कैसे हो?

जीव—तब मैं तुम्हारा हूँ, मैं तुम्हारा दास हूँ; भला यह सब कैसे? इसमें क्या प्रमाण?

भगवान्—इसमें वेद ही प्रमाण है। वेदने कहा है कि 'वह सबके अन्दर रहकर सबका शासन करता है। सर्वात्मा है—**अन्तःप्रविष्टः शास्ता**।' '**भर्ता सन् भ्रियमाणो बिभर्ति**।' इत्यादि।

जीव—मैं जो कहता हूँ कि 'मैं मेरा हूँ', इसमें मेरा अनादिसिद्ध अनुभव ही प्रमाण है। मैं ही स्वामी, भोगी, सिद्ध, बली, सुखी, धनी आदि हूँ। यज्ञ करूँगा, दूँगा, सुख लूटूँगा।

भगवान्—तुम्हारे इस अनुभवपर तो बहुत ही आक्षेप हैं।

जीव—कहाँ आक्षेप हैं? किसने किये हैं?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भगवान्—गीतादिमें आक्षेप हैं। मैंने किये हैं। सब जानते हैं। 'क्षिपाम्यजस्रमशुभान्०', ऐसे जीवोंको मैं आसुरी योनिमें डाल देता हूँ।

जीव—परन्तु भगवन्! वह आपके ही वचन हैं, इसका साक्षी कौन है?

भगवान्—सुधी, सत्पुरुष साक्षी हैं।

जीव—खेदके साथ कहना पड़ता है कि मैं उन्हें साक्षी नहीं मानता; क्योंकि वे मध्यस्थ नहीं है, तुम्हारे पक्षपाती हैं। तुम्हारे भक्त हैं, तुम्हारे निष्ठावान् सेवक हैं। लोक-व्यवहारमें ऐसे मनुष्योंकी साक्षिता निर्णायक नहीं हुआ करती।

भगवान्—अच्छा, ऐसी बात है तो मैं ऐसा प्रमाण उपस्थित करता हूँ कि जिससे तुम भी मान जाओ और सब मान जायँ।

ऐसा कहकर भगवान् श्रीरंगनाथने अपने भक्तवात्सल्यके अनुरूप वेषभूषा ग्रहण करके, जिससे उनका परत्व शरण्यत्व, अचिन्त्य-अनन्त-कल्याणगुणाश्रयत्व आदि प्रकट होते हों, अपनेको मूर्तिमान कर दिया।

पूर्वोक्त श्लोकमें श्रीपराशर भट्टारकने यही उत्प्रेक्षा की है।

●●●

पहले मैं समझता था कि जप, पाठ, ध्यानादिके बलसे भगवान्को पा लूँगा। इसके लिए बड़े-बड़े अनुष्ठान किये मैंने। परन्तु स्वप्नमें भी उनके दर्शन नहीं हुए। आखिर मैं हार गया। अपने कर्तृत्वका अभिमान टूट गया। मेरे अहंके वशमें भगवान् नहीं हैं। अब भी नहीं मिले तो इस प्रकार जीवनमें कभी नहीं मिलेंगे। यह निराशा आनेपर अन्धकार छा गया। मन-बुद्धि-अहं सब शिथिल हो गिर पड़े। बस, तभी भगवान्की कृपा उतरी। वह दिव्य प्रकाश, दिव्य दर्शन! वह दिव्य क्षण अब भी भुलाये नहीं भूलता है। अभिमान-अहंता—वह कैसी भी हो, भगवद्दर्शनमें, भगवत्प्राप्तिमें बाधक है। दर्शन निर्गुणका हो या सगुणका। भगवान्की ओरसे माया, आवरण, कोई परदा नहीं है। यह सब तुम्हारे अभिमानके कारण ही प्रतीत होते हैं। यह टूटा और परमात्मा प्रकट। श्रीवल्लभाचार्यके मतमें निस्साधनता, श्रीरामानुजाचार्यके मतमें शरणागति (प्रपत्ति), श्रीचैतन्यके मतमें व्याकुलता-जन्य मूर्च्छा और श्रीशंकरके मतमें अन्तःकरणकी शुद्धि है यह।

म० श्री०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

पंडितराज जगन्नाथ की भक्ति

डॉ० वि० कृष्णस्वामी अय्यंगार

रीडर, केन्द्रीय हिन्दी-संस्थान, आगरा

पण्डितराज जगन्नाथ संस्कृत काव्यशास्त्रके एक प्रख्यात आचार्य थे। कहा जाता है कि वे मुगलसम्राट् शाहजहाँके दरबारमें थे। उनके बारेमें यह भी किंवदन्ती पायी जाती है कि वे किसी यवनरमणीमें अनुरक्त थे। किन्तु इस किंवदन्तीकी प्रामाणिकताके विषयमें कोई अन्तिम निर्णय नहीं दिया जा सकता। इतना निश्चित है कि जगन्नाथ रसिक और श्रृंगारी थे। अलंकारशास्त्रमें उनका ग्रन्थ 'रसगंगाधर' अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह एक प्रौढ शास्त्रीय ग्रन्थ है, फिर भी इसकी भाषा अत्यन्त सरस एवं रोचक है। जगन्नाथ न केवल एक मौलिक चिन्तनशील आचार्य थे, अपितु वे स्वयं एक प्रतिभासम्पन्न महाकवि भी थे। रसगंगाधरमें उन्होंने स्वरचित उदाहरण ही प्रस्तुत किये हैं। व्याकरण-शास्त्रमें भी उनका प्रकाण्ड पाण्डित्य था। भट्टोजि दीक्षितको 'प्रौढमनोरमा'का खण्डन करनेके लिए उन्होंने 'कुचमर्दिनी' नामक टीका लिखी। किन्तु 'रसगंगाधर' ही उनको अमरकीर्तिका आधारस्तम्भ है।

पण्डितराज जगन्नाथ रसिक थे। श्रृंगारी कविताकी रचनामें सिद्धहस्त थे। फिर भी उनके ग्रन्थोंमें भक्ति-भावनाका अभाव नहीं है। भारतीय संस्कृतिमें पलनेके कारण उनके मनमें भी भक्तिके संस्कार दृढमूल होकर पनपने लगे। 'रसगंगाधर'में भक्तिपरक कई सुन्दर पद्य मिलते हैं।

जगन्नाथ किसी विशेष सम्प्रदायके पक्षपाती नहीं थे। उन्होंने शिव और

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

विष्णुमें भी कोई भेद नहीं माना। वे तो कालिदासके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनोंको एक ही परवस्तुके विविधरूप मानते हुए प्रतीत होते हैं। कालिदासने 'कुमारसम्भव'में लिखा—

'एकैव मूर्तिर्बिभिदे त्रिधा सा।
सामान्यमेषां प्रथमावरत्वम्॥'

इसी सिद्धान्तका अनुसरण जगन्नाथने भी किया है। अर्थगुण 'ओज' का उदाहरण उन्होंने निम्न श्लोकके रूपमें दिया है—

'तपस्यतो मुनेर्वक्त्राद्वेदार्थमधिगत्य सः।
वासुदेवनिविष्टात्मा विवेश परमं पदम्॥'

इसकी व्याख्यामें स्वयं लिखा है—

'अत्र मुनिस्तपस्यति, तद्वक्त्रात् स वेदार्थमधिगतवान्, तदनन्तरं वासुदेवे परब्रह्मणि मनः प्रावेशयत्, ततश्च मुक्तोऽभूत्।'

यहाँ उन्होंने स्पष्ट शब्दोंमें उल्लेख किया है कि वासुदेव (विष्णु) ही परब्रह्म या सर्वेश्वर हैं। रसगंगाधरका मंगलश्लोक ही भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति और प्रार्थनाके रूपमें लिखा गया है—

'स्मृतापि तरुणातपं करुणया हरन्ती नृणा-
मभङ्गुरतनुत्विषां वलयिता शतैर्विद्युताम्।
कलिन्दगिरिनन्दिनी – तटसुर – द्रुमालम्बिनी
मदीयमतिचुम्बिनी भवतु कापि कादम्बिनी॥'

यहाँ भगवान् कृष्णको 'कादम्बिनी' या नीलमेघ कहा गया है। इस मेघकी विशेषता है कि यह स्मरणमात्रसे संसार-तापका निवारण करता है। इस मेघको चारों ओर अभंगुर या स्थिर प्रकाशकी विद्युद्वल्लियोंका (गोपियोंको विद्युत्के रूपमें माना है) घेरा है। यह मेघ आकाशमें नहीं, 'अपितु कालिंदी' (यमुना) नदीके तीरके पारिजात वृक्षका अवलम्ब लेकर स्थित है। कविकी प्रार्थना है कि यह नील मेघ सदा मेरी मतिका चुम्बन करे—मुझे भगवान्‌का स्मरण रहे।

इस प्रकार विष्णुकी स्तुति करनेवाले इस कविने महादेवकी भी वन्दना की है।

'त्वामन्तरात्मनि लसन्तमनन्तमज्ञाः
तीर्थेषु हन्त मदनान्तक शोधयन्तः।
विस्मृत्य कण्ठतटमध्यपरिस्फुरन्तं
चिन्तामणिं क्षितिरजःसु गवेषयन्ति॥'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
भगवान् मदनान्तक तो प्रत्येक जीवके हृदयमें अधिष्ठित हैं—सर्वान्तर्यामी हैं। किन्तु कुछ अन्धविश्वासी लोग उन्हें तीर्थस्थानोंमें खोजते हैं। अपने हृदयमें स्थित परमात्माकी खोजमें तीर्थोंकी यात्रा करना, कण्ठमें धारण किये हुए चिन्तामणि (रत्न) को धूलमें खोजनेके समान मूर्खता और अविवेकका काम है। दूसरा पद्य है—

'अन्यैः समानममरैर्जगदन्तरात्मन्
ये चन्द्रशेखर वदन्ति भवन्तमज्ञाः।
ते किं न हन्त तुलयन्ति नभोनिरन्तं
वातायनोदरगतैर्विवरान्तरालैः॥'

जो मूर्ख पुरुष समस्त जगत्के अन्तर्यामी परमेश्वर चन्द्रशेखरकी तुलना इन्द्र आदि सामान्य कोटिके अन्य देवताओंसे करते हैं, वे अनन्त आकाशकी तुलना किसी खिड़कीके मध्यके अवकाशसे क्यों नहीं करते ? स्पष्ट ही है कि इन पद्योंमें कविने भगवान् महादेवको परब्रह्म घोषित किया है। उनकी दृष्टिमें वासुदेव और महादेवमें कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक ही ब्रह्मके दो रूप हैं।

विष्णुके दशावतारोंमें जगन्नाथने प्रधान-रूपसे कृष्णको ग्रहण किया है। राम और वामनका भी उन्होंने विशेष-रूपसे उल्लेख किया है। माधुर्य गुणका उदाहरण देते हुए उन्होंने लिखा—

'तां तमालतरुकान्तिलङ्घिनीं
किंकरीकृतनवाम्बुदत्विषम्।
स्वान्त मे कलय शान्तये चिरं
नैचिकीनयनचुम्बितां श्रियम्॥'

कृष्णकी देहकान्ति तमाल वृक्षकी कान्तिको परास्त करनेवाली है। नील मेघकी कान्ति इसकी चरणदासी है। गायें इस दैवी सौन्दर्य-श्रीका दर्शन कर रही हैं। ऐसे भगवान्का स्मरण करनेसे 'चिरशान्ति' प्राप्त हो सकेगी।

कभी-कभी जीव पारलौकिक चिन्ताओंसे अभिभूत होकर दुखी हो उठता है। अपने संचित पापराशिका ध्यान आते ही वह निराशाके सन्तापमें डूब जाता है। कविने अपने हृदयके ऐसे सन्तापको दूर करनेके लिए सान्त्वनाका यह उपाय सोच निकाला—

'सन्तापयामि हृदयं धावं धावं धरातले किमहम्।
अस्ति मम शिरसि सततं नन्दकुमारः प्रभुः परमः॥'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भूतलमें व्यर्थकी चिन्ताओंसे ग्रस्त होकर मैं क्यों जहाँ-तहाँ दौड़धूप करूँ? क्यों अनावश्यक झँझटमें फँसकर संतापका शिकार बनूँ? परम प्रभु नन्दकुमार मेरी रक्षाके लिए तैयार हैं, उनका वरद हस्त मेरे सिरपर है। फिर किस बातकी चिन्ता?

जगन्नाथके बारेमें संस्कृतज्ञ समाजकी यह आम धारणा है कि वे श्रृंगारी थे, विषयासक्त थे और मोहपाशमें फँसे थे। किन्तु जगन्नाथकी निम्नलिखित उक्तिसे इस भ्रान्तिका निराकरण हो सकता है। उन्होंने भगवान्‌से प्रार्थना की है—

'न धनं न च राज्यसम्पदं
न हि विद्यामिदमेकमर्थये।
मयि धेहि मनागपि प्रभो
करुणाभङ्गितरङ्गितां दृशम्॥'

मुझे धन, राज्य, या विद्याकी कामना नहीं है मेरी तो प्रार्थना केवल यही है कि हे प्रभो, तुम्हारी करुणादृष्टि जरा-सी मुझपर भी पड़े।'

अतिशयोक्ति अलंकारकी ध्वनिका उदाहरण देते हुए जगन्नाथने 'कृष्ण' नामके माधुर्यकी यों प्रशंसा की है—

'मृद्वीका रसिता, सिता समशिता, स्फीतं निपीतं पयः,
स्वर्यातेन सुधाप्यधायि कतिधा रम्भाधरः खण्डितः।
तत्त्वं ब्रूहि मदीय जीव भवता भूयो भवे भ्राम्यता,
कृष्णेत्यक्षरयोरयं मधुरिमोद्गारः क्वचिल्लक्षितः॥'

द्राक्षा, शक्कर, दूध, अमृत, रम्भाका अधररस आदिका माधुर्य अनुभवसे जाना है। हे मेरे जीव, जन्म-जन्मान्तरोंमें संसार-चक्रका परिभ्रमण करते हुए तुमने क्या कभी कहीं और 'कृष्ण' नामके माधुर्यकी समानता देखी? भगवान् कृष्ण ही संसार-तापके निवारण-कर्ता तथा मुक्तिदाता हैं—

'ग्रीष्मचण्डकरमण्डल-भीष्मज्वाल-संसरणतापितमूर्तेः।
प्रावृषेण्य इव वारिधरो मे वेदनां हरतु वृष्णिवरेण्यः॥'

भक्तोंका विश्वास है कि जब मरण आसन्न है, तब अन्तिम क्षणमें भगवान्‌का स्मरण करना मुक्तिका कारण है, अजामिलका उपाख्यान प्रसिद्ध है। अजामिलने जीवनके अन्तिम क्षणमें नारायण नामका उच्चारण किया, इसलिए उसे मोक्षलाभ हुआ, जगन्नाथने भी अवसान कालमें भगवान्‌की स्मृति की, प्रार्थना की है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'आलिङ्गितो जलधिकन्यकया सलीलं
लग्नः प्रियंगुलतयेव तरुस्तमालः।
देहावसानसमये हृदये मदीये
देवश्चकास्तु भगवानरविन्दनाभः॥'

शिवकी अनन्त महिमाका वर्णन करते हुए कविने लिखा है कि वेदमें तथा लोकमें भी यह निर्विवाद रूपसे सिद्ध और स्वीकृत है।

'निखिले निगमकदम्बे लोकेष्वप्येष निर्विवादोऽर्थः।
शिव इव गुरुर्गरीयान् गुरुरिव सोयं सदाशिवोऽपि तथा॥'

ईश्वरका लक्षण एक यह भी है कि वह सृष्टि, स्थिति तथा संहारका कर्ता है। उपनिषदोंमें इसका प्रतिपादन इन वाक्योंमें हुआ है— **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्ति अभिसंविशन्ति।'** ब्रह्मसूत्रोंमें भी **'जन्माद्यस्य यतः'** से इसका निरूपण किया गया। जगन्नाथने भगवान् शंकरको सृष्टिकर्ता तथा संहारक दोनों रूपोंमें स्मरण किया है—

'चराचरो - भयाकार-जगत्कारणविग्रहम्।
कल्पान्तकालसंक्रुद्धं हरं सर्वहरं नुमः॥'

पूर्वार्धमें कहा है कि भगवान् महादेव चराचर जगत्के कारण हैं। उत्तरार्धमें कहा कि कल्पान्तकालमें वे ही संसारका संहार करनेवाले हैं। इन शब्दोंमें उनका 'परमेश्वरत्व' अङ्कित हुआ है। यहाँ 'हर' को परब्रह्मके रूपमें स्मरण करनेके वाद, स्मरणालंकारके प्रस्तावमें कविने फिर कृष्णको ब्रह्म कहकर, कृष्ण, शिव आदि सभी शब्दोंसे वाच्य उस परम सत्ताकी एकतापर अपना दृढ़ विश्वास व्यक्त किया है—

'सन्त्येवास्मिन् जगति बहवः पक्षिणो रम्यरूपाः,
तेषां मध्ये मम तु महती वासना चातकेषु।
यैरध्यक्षैरथ निजसखं नीरदं स्मारयद्भिः
स्मृत्यारूढं किमपि भवति ब्रह्म कृष्णाभिधानम्॥'

संसारमें सुन्दर रूपवाले कई प्रकारके पक्षी विद्यमान हैं। किन्तु उनमें-से मैं चातकको विशेष रूपसे प्यार करता हूँ। क्योंकि, चातकके दर्शनसे मेघकी स्मृति आती है और उससे मेघश्याम 'कृष्ण' नामक ब्रह्मकी स्मृति होती है। ऐसी ही एक और उक्ति है—

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

'अपारे संसारे विषमविषयारण्यसरणौ
मम भ्रामं-भ्रामं विगलितविरामं जडमतेः।
परिश्रान्तस्यायं तरणि-तनयातीर-निलयः
समन्तात्सन्तापं हरि-नव- तमालस्तिरयतु ॥'

भगवान् शंकर दिगम्बर हैं, भस्मधारी हैं। इसीको 'पर्यायोक्त'की भंगीसे कहा है—

'सूर्याचन्द्रमसौ यस्य वासो रञ्जयतः करैः।
अङ्गरागं सृजत्यग्निस्तं वन्दे परमेश्वरम् ॥'

भगवान् विष्णु तो चतुर्भुज हैं। भुजाओंमें चक्र, शार्ङ्ग, गदा और खड्ग धारण किये हैं। ये सब दिव्यायुध भक्तोंकी रक्षाके लिए ही तो हैं। कविने भगवान्से पूछा है कि तुम्हारे सामने ही काम, मोह, मत्सर आदि शत्रु मुझपर आक्रमण कर रहे हैं, तो तुम क्यों मेरी उपेक्षा कर रहे हो ?

'मदकामविमोहमत्सरा रिपवस्त्वत्पुर एव तावकम्।
धृतशार्ङ्गगदारिनन्दक प्रतिकर्षन्ति कुतो न वीक्षसे ॥'

जो भक्त शिवका ध्यान करते हैं, वे ही सफलजन्मा हैं। शिवको भूलकर सांसारिक चिन्ताओंमें डूबे हुए लोगोंका जीवन व्यर्थ ही है।

'ये त्वां ध्यायन्ति सततं त एव कृतिनां वराः।
मुधा गतं पुराराते भवदन्यधियां जनुः ॥'

पण्डितराज अन्धविश्वासोंके, अर्थहीन रूढ़ियोंके, घोर विरोधी थे। बाह्याचारके दाम्भिक आडम्बरकी उन्होंने अवहेलना की है। धर्मके नामपर किये जानेवाले श्रद्धारहित अनुष्ठानोंको वे व्यर्थ मानते थे। यज्ञ-याग, शास्त्रार्थकी शुष्क चर्चा, तीर्थयात्रा, पाण्डित्यप्रदर्शन आदिका उनकी दृष्टिमें कोई महत्त्व नहीं था। ध्यान रखना चाहिए कि वे स्वयं पण्डितराज थे, शास्त्रार्थकी प्रक्रियामें या वाद-विवादकी कलामें उनका नैपुण्य अप्रतिम था। रसगंगाधरमें कई स्थानोंमें उन्होंने अन्य आचार्योंके मतका सयुक्तिक खण्डन किया है। फिर भी तत्त्वज्ञानके क्षेत्रमें वे शुष्क पाण्डित्यके समर्थक नहीं थे। उन्होंने लिखा है—

'बन्धोन्मुक्त्यै खलु मखमुखान् कुर्वते कर्मपाशान्
अन्तः शान्त्यै मुनिशतमतानल्पचिन्तां वहन्ति।
तीर्थे मज्जन्त्यशुभजलधेः पारमारोढुकामाः,
सर्वं प्रामादिकमिह भवभ्रान्तिभाजां नराणाम्।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्मबन्धनसे मुक्त होनेके लिए यज्ञ-याग आदि विविध कर्मोंका अनुष्ठान करते हैं। मनकी शान्ति पानेके लिए सैकड़ों मुनियोंके विविध मतोंकी चिन्ता—परिशीलन—करते हैं। अशुभ-समुद्रसे उत्तीर्ण होनेके लिए तीर्थोंमें डुबकियाँ लगाते हैं। भ्रान्तिग्रस्त पुरुषोंका प्रत्येक कार्य 'प्रामादिक' ही हुआ करता है। पण्डितराजका निष्कर्ष है कि सच्ची भक्ति एक ही भगवान्की प्राप्तिका उपाय हो सकता है। उनका विश्वास है कि परतत्त्व सर्वत्र—घट-घटमें—व्याप्त है। अपने हृदयमें स्थित उस परात्पर तत्त्वको बाहर कहीं खोजना कैसी मूर्खता है? अज्ञानियोंको समझाते हुए उन्होंने कहा—

'विश्वद्रीचा भुवनमखिलं भासते यस्य धाम्ना
सर्वेषामप्यहमहमिति प्रत्ययालम्बनं यः।
तं पृच्छन्ति स्वहृदयगतावेदिनो विष्णुमन्यान्,
अन्यायोऽयं शिव शिव नृणां केन वा वर्णनीयः॥'

धर्म, अर्थ, और काम त्रिवर्ग कहलाते हैं। मोक्षको अपवर्ग कहा जाता है। ये चारों पुरुषार्थ भक्तिसे ही लभ्य हैं। जगन्नाथकी उक्ति है—

'किं नाम तेन न कृतं सुकृतं पुरारे
दासीकृता न खलु का भुवनेषु लक्ष्मीः।
भोगा न के बुभुजिरे विबुधैरलभ्या
येनार्चितोऽसि करुणाकर हेलयापि॥'

शान्तरसका उदाहरण प्रस्तुत करते हुए, जगन्नाथने विषयस्पर्शशून्य चिदानन्दात्मक समाधिका सुन्दर चित्र दिया है—

'सुरस्रोतस्विन्याः पुलिनमधितिष्ठन्नयनयो-
र्विधायान्तर्मुद्रामथ सपदि विद्राव्य विषयान्।
विधूतान्तर्ध्वान्तो मधुरमधुरायां चिति कदा
निमग्नः स्यां कस्यांचन नवनभस्याम्बुदरुचि॥'

इस पद्यमें नील मेघश्यामल भगवान्के प्रति कविकी 'रति' मुख्य है। अतः शान्तरसका स्थायी निर्वेद यहाँ गुणीभूत है। यह रही अलंकार-शास्त्रकी 'विशिष्ट पारिभाषिक चर्चा'। किन्तु भक्तिके इस स्वाभाविक उद्घोषका सौन्दर्य चर्चातीत है।

पण्डितराज जगन्नाथने करुणालहरी, गंगालहरी, यमुनालहरी आदि कुछ लघुकाव्य भी लिखे हैं। गंगा और यमुना हमारी पवित्र नदियाँ हैं। गंगा तो हरिपादसे उद्भूत तथा हरशिरःस्पर्शसे पवित्र है। यमुना कृष्णकी बाललीलाकी

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

साक्षी है। जगन्नाथने इन नदियोंकी पवित्रताकी प्रशंसामें बहुत कुछ लिखा है। उनकी यह प्रशंसा भी भगवद्भक्तिका ही एक अंग है। गंगा या यमुनाकी श्रेष्ठता भगवान्के सम्बन्धके कारण ही मानी जाती है। पण्डितराजने रस-गंगाधर जैसे एक काव्यशास्त्रीय ग्रन्थमें रस, गुण, अलंकार आदिका विचार करते हुए और उनके उदाहरण देते हुए अपनी भक्तिका विस्तृत परिचय दिया है। उन्हें श्रृंगारी कवि कहनेका हम विरोध नहीं करते। किन्तु हमारा इतना ही अनुरोध है कि उनकी भक्तिपरक उक्तियोंका भी सही मूल्यांकन होना चाहिए।

कूड़ा-अमृत

किसीने आमका स्वादु फल खाकर बीजको कूड़ेपर फेंक दिया। बीजको बड़ा दुःख हुआ और सूखने लगा। समयपर वर्षा हुई। कूड़ेकी खाद पाकर वह अंकुरित हुआ। कुछ ही वर्षोंमें वृक्ष बन गया। कोई कहता—कैसा हरा-भरा है। कोई उसके लाल-लाल कोमल किसलयको देखकर मुग्ध हो जाता। कोई बौरके सौरभसे आकृष्ट होता तो कोई छायामें आकर बैठता। थोड़े ही दिनोंमें सैकड़ों मधुर-मधुर फल लगे। उससे लोगोंकी क्षुधा मिटने लगी। शरीरको पुष्टि मिलती और मनको तुष्टि। वह कल्पवृक्ष हो गया। आमके मनमें पश्चात्ताप था तो केवल इतना ही कि उसने कूड़ेपर फेंकनेवालेको मन-ही-मन भला बुरा कहा था और खादको एक गन्दी वस्तु समझा था। अब वह कृतज्ञताके भारसे झुककर कूड़ेको चूमना चाहता था, परन्तु अब कूड़ा छिप गया था और फेंकनेवाले व्यक्तिका पता नहीं था।

क्या वह आमका बीज फेंकनेवाला ईश्वर नहीं था? क्या वह खाद अमृत नहीं थी? दुःख और उसके दाता—दोनों ही सुखके उद्गम स्थान हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मीमांसकोंका सर्वस्व 'अपूर्व' क्या है?

महामहोपाध्याय पण्डित श्री चिन्नस्वामिशास्त्री,

प्राच्यविद्याविभाग, विश्वविद्यालय, वाराणसी

अब 'अपूर्व' क्या है? इसपर विचार प्रारम्भ करते हैं। इसपर वार्तिककार श्रीकुमारिल भट्ट कहते हैं—

कर्मभ्यः प्रागयोग्यस्य कर्मणः पुरुषस्य वा।
योग्यता शास्त्रगम्या या परा साऽपूर्वमुच्यते॥

प्रधान कर्म अथवा अङ्ग कर्मके अनुष्ठानसे पूर्व मनुष्य स्वर्गादि प्राप्तिके अयोग्य रहते हैं और यज्ञ भी स्वर्गरूप कार्यके उत्पादन योग्य नहीं होते। प्रधान और अङ्ग दोनों ही प्रकारके कर्म उन दोनोंकी अयोग्यता दूर करके योग्यता उत्पन्न करते हैं—यह सबको स्वीकार करना चाहिए। यदि यह योग्यताकी उत्पत्ति स्वीकार न की जाय तो कर्मानुष्ठान करनेवाला भी न करनेवालेके समान ही रहेगा। इसी कर्मोत्पाद्य, पुरुषगत अथवा यज्ञगत योग्यताको मीमांसाशास्त्रमें 'अपूर्व' संज्ञा दी गयी है। (देखिये, तन्त्रवार्तिक)।

इस विषयको विशद-रूपसे समझिये। श्रुतियोंमें स्वर्ग, पुत्र, पशु आदि भिन्न-भिन्न फलोंके साधनके रूपमें विविध कर्मोंका विधान है। यह कर्म इस फलका साधन है—यह साधन-फल सम्बन्ध केवल श्रुति-बलसे ही अवगत होता है। जबतक अनुष्ठान करके उन कर्मोंको साकार न किया जाय, तबतक उनका स्वरूप सिद्ध ही नहीं होता और वे अपने फलके प्रति साधन-भावको ही प्राप्त नहीं

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होते। पुरुष भी उन फलोंको भोगना तो चाहे, परन्तु साधन-कर्मोंका अनुष्ठान न करे तो उसे उन कर्मोंका कर्तृत्व-लाभ नहीं होता और वह उन फलोंके भोग-योग्य नहीं होता। इस कर्म-निष्ठ अथवा पुरुषनिष्ठ अयोग्यताको दूर करनेके लिए अङ्गसहित कर्मोंका अनुष्ठान आवश्यक है। अनुष्ठित होनेपर भी वे कर्म क्षणिक होते हैं इसलिए कालान्तर-भावी फलके साथ उनकी साधनता सम्बद्ध नहीं होती, क्योंकि यह नियम सभीको स्वीकार है और शास्त्र-सम्मत है कि कारणको कार्यके अव्यवहित पूर्वमें होना ही चाहिए। कर्मके फल स्वर्गादि दूसरे जन्ममें भोगे जाते हैं। कर्म और भोगके मध्यमें बहुत-सा काल है। पुत्र, पशु आदिका भोग इसी जन्ममें किया जा सकता है, फिर भी उनके भोगमें भी कुछ कालका व्यवधान तो रहता ही है। कर्मानुष्ठानके तत्काल बाद ही पुत्र, पशु आदिकी उत्पत्ति किसीके अनुभवमें नहीं आती। कार्य-कारण सम्बन्धमें दो-तीन क्षणका व्यवधान भी स्वीकार नहीं किया जा सकता तो बहुकालकी चर्चा ही क्या है? परन्तु वेदोंमें स्वर्गके लिए दशपूर्णमासयाग, पशुके लिए चित्रायाग पुत्रके लिए पुत्रेष्टिका विधान प्राप्त होता है। कालका व्यवधान होनेपर इनके कार्य-कारण भावका निर्वाह कैसे हो सकता है? इसके लिए प्रयत्न करना चाहिए। अवश्य ही यागादिसे कोई ऐसी वस्तु उत्पन्न होती है और फलोत्पत्ति-पर्यन्त कहीं रहती है, जो अपने अनुरूप फलको उत्पन्न करके तब नष्ट होती है। इसी वस्तु-विशेषको मीमांसा-शास्त्रमें 'अपूर्व' कहते हैं। अतिशय, अदृष्ट, शक्ति, योग्यता—ये सब अपूर्वके ही पर्याय हैं। यह कहाँ रहकर अपना फल उत्पन्न करता है? यज्ञ-याग तो अपनी उत्पत्तिके तीसरे क्षणमें ही नष्ट हो जाते हैं। यदि अपूर्वको उनके आश्रित मानें तो आश्रयका नाश हो जानेपर आश्रयीका नाश माना जायगा और उसकी कल्पना व्यर्थ जायगी। इसीसे वार्तिककारने कहा है—

शक्तिः कार्यानुमेयत्वात्
यद्गतैवोपयुज्यते।
तद्गतैवाभ्युपेतव्या
स्वाश्रयाऽन्याश्रयापि वा॥

शक्ति कार्यानुमेय है। इसलिए जिस अधिकरणमें होनेसे उसका उपयोग होता हो, उसीमें उसे स्वीकर करना चाहिए। वह स्वाश्रय हो अथवा अन्याश्रय—इसका कोई नियम नहीं हैं। स्वर्ग और यज्ञका साध्य-साधनभाव एक-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

मात्र श्रुतान्यथानुपपत्तिसे ही कल्पित होनेके कारण यह श्रुतार्थापत्ति प्रमाणगम्य ही है—ऐसा प्रमाणविद् आचार्योंका मत है। यह अपूर्व पदार्थ ही मीमांसाशास्त्ररूप राजभवनका मूल स्तम्भ है। मीमांसाशास्त्र प्रधानतया इसीका आश्रय लेकर प्रवृत्त होता है, यह दृढ़ताके साथ कहा जा सकता है।

बात यह है कि मीमांसाशास्त्रमें मुख्यतः सहकारी सहित धर्मके ही प्रमाण, स्वरूप, साधन और फलका विचार किया जाता है। यह निर्विवाद है कि सभी पुरुष अपने लिए सुख चाहता है और उसकी सिद्धिके लिए साधनका अन्वेषण करता है। साधनका ज्ञान होनेपर उसकी पूर्णताके लिए प्रयत्न करता है और उसके लिए सब कुछ करता है। ठीक-ठीक साधनका अनुष्ठान होनेपर वह फल उत्पन्न करता है। फल उत्पन्न होनेपर समय और योग्यताके अनुसार उसका उपभोग होता है। इस प्रक्रियाको सभी जानते हैं। अधिकारी मनुष्य इतिहास-पुराणादिके द्वारा पारलौकिक सुख-विशेष अथवा देश-विशेषका श्रवण करता है। फिर उसे अपने लिए चाहता है। तदनन्तर साधनका अनुसन्धान करता है। अनुसन्धान करनेपर श्रुति-स्मृति द्वारा उसके साधनके रूपमें यज्ञ-यागादिको समझता है। साधनका ज्ञान होनेपर भी मनमें यह शंका होती है कि यह क्षणिक कर्म कालान्तर भावी फलका हेतु कैसे हो सकता है। तब वह उस कर्मसे पैदा होनेवाले और कालान्तरमें प्राप्तव्य फल-पर्यन्त रहनेवाले अपूर्व पदार्थकी कल्पना करके वह सन्देहरहित हो जाता है। कहनेका अभिप्राय यह है कि जबतक साधन और फलके मध्यवर्ती पदार्थकी कल्पना नहीं की जायगी तबतक यज्ञ-यागादिमें साधनताकी ही सिद्धि नहीं होगी। जब यागादिमें साधनत्व ही सिद्ध नहीं होगा तब फलकी उत्पत्ति कैसे होगी? फलकी उत्पत्ति न होनेपर बहुश्रम एवं व्ययसाध्य यागादि कर्ममें कौन प्रवृत्त होगा? स्वयं प्रवृत्ति न होनेपर वेद कैसे बलात् प्रवृत्त करेगा? जो श्रेय-साधक नहीं होगा वह धर्म कैसे होगा? जब वह धर्म नहीं होगा, तब धर्म-विचारशास्त्र सर्वथा निरालम्बन हो जायगा? फिर रहेगा क्या? अतः धर्म-विचार-रूप मीमांसाशास्त्रका मुख्यतम आलम्बन यह अपूर्व ही है।

विहित कर्म फलजनक है, यह सिद्ध करनेके लिए जैसे अपूर्वकी कल्पना आवश्यक है, वैसे ही निषिद्ध कर्मके फल

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

नरकादिकी उत्पत्तिके लिए भी। दोनों स्थितिमें ही उसका नाम अपूर्व है। अलग-अलग कहना हो तो उसे पुण्य या पापके नामसे कह सकते हैं। एक है विहित कर्म-जन्य और दूसरा है निषिद्ध कर्म-जन्य। न्याय-वैशेषिकादि इन्हींको धर्माधर्म कहते हैं। मीमांसकोंके मतमें अपूर्वकी सविशेष प्रधानता है। परन्तु दूसरे शास्त्रकारोंको भी इसे स्वीकार करना पड़ता है और वे ऐसा करते हैं।

भगवान् प्रशस्तपादने अपने भाष्यमें कहा है कि "धर्म आत्माका गुण है। यही कर्ताके प्रिय, हित और मोक्षका साधन है। यह अतीन्द्रिय है और सुखके अन्तकी संवित् नहीं होने देता। यह पुरुष और अन्तःकरणके संयोगसे उत्पन्न विशुद्ध कामनासे होता है। और अधिकारके अनुसार साधन निमित्त बनते हैं। श्रुति-स्मृति विहित द्रव्य-गुण-कर्मके द्वारा वह सम्पन्न होते हैं।" उन्होंने ही अन्यत्र कहा है—"अधर्म भी आत्माका ही गुण है। अधर्मके साधन हैं—शास्त्रमें प्रतिषिद्ध कर्म। वे धर्म-साधनके विपरीत होते हैं, जैसे हिंसा, चोरी, झूठ आदि।"

इसका निष्कर्ष यह है कि श्रुतिविहित यज्ञादि-रूप क्रियासे धर्मकी उत्पत्ति होती है। वह फलोदय-पर्यन्त कर्ताके आश्रित रहता है। फलोत्पत्ति होनेपर उसका नाश हो जाता है। वह एक अतीन्द्रिय पदार्थ-विशेष है। अधर्म भी निषिद्ध क्रियासे उत्पन्न होता है और धर्म-सदृश ही होता है। इस प्रकार नैयायिक और वैशेषिक आदि अपूर्वको ही धर्म कहते हैं। मीमांसक विहित और निषिद्ध क्रियाको ही धर्म और अधर्म कहते हैं। उनसे अपूर्वकी उत्पत्ति मानते हैं। यह सर्वथा निर्विवाद है कि कर्म और फलके बीचमें एक अपूर्व नामक वस्तु है। जैसा कि आचार्य जयन्त भट्टने भी कहा है—

एवञ्च क्षणभङ्गित्वा-
त्संस्कारद्वारिका स्थितिः।
स कर्मजन्यसंस्कारो
धर्माधर्मगिरोच्यते ॥

कर्म क्षणभंगुर है। वह संस्कार द्वारा ही फल-पर्यन्त रह सकता है। उस कर्मजन्य संस्कारको ही धर्म और अधर्म नामसे कहा जाता है।

न्यायसूत्रके भाष्यकार भगवान् वात्स्यायन कहते हैं कि 'शुभ प्रवृत्तिसे धर्म-संस्कार और अशुभ प्रवृत्तिसे अधर्म-संस्कार होता है। वही निमित्तान्तरसे अनुगृहीत होकर कालान्तरमें फल देता है।" न्यायवार्तिककार भी इन्हींके स्वरमें स्वर मिलाते हैं।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उनका कहना है कि "विनष्ट कर्मसे फलकी उत्पत्ति होती है—ऐसा हम नहीं कहते। अग्निहोत्रादि कर्म विधिपूर्वक करनेसे धर्मकी उत्पत्ति होती है और उससे फल होता है—यह हमारा अभिप्राय है।" न्याय-कुसुमाञ्जलिकार श्री विना नियत भोगकी प्राप्ति नहीं हो सकती—

चिरध्वस्तं फलायालं
न कर्माऽतिशयं विना।
सम्भोगो निर्विशेषाणां
न भूतैस्संस्कृतैरपि॥

भगवान् शंकराचार्य भी

अद्वितीय तत्त्व

शुकतालमें सत्संग हो रहा था। दण्डीस्वामी श्रीविष्णु आश्रमजी एवं आचार्य श्रीचक्रपाणि जी विराजमान थे। प्रसंग यह चला कि हिरण्यकशिपुने सम्पूर्ण विश्वका कण-कण देख लिया, कहीं ईश्वर न मिला। अन्तमें उसने यह निश्चय किया कि ईश्वर मुझसे डरकर वहाँ चला गया, जहाँसे कोई लौटकर नहीं आता। उसका अभिप्राय था कि ईश्वर मर गया। आचार्य श्रीचक्रपाणि जीने कहा—

'देखो, ग्रन्थकारने कितना संम्भालकर कहा है। इसमें भी एक मधुरता है।'

महाराजश्रीने कहा—'इस प्रसंगका अभिप्राय यह है कि जब-तक ईश्वर प्रत्यगात्मासे एक नहीं हो जायगा, तबतक उसके लिए भी खतरा बना हुआ है।' सब लोग हँसने लगे।

असलमें बात यह है कि ईश्वर-विषयक मानसिक उपलब्धि अथवा अनुपलब्धिका कोई महत्त्व नहीं है। प्रत्यगात्मासे अभिन्न परमात्मा ही अबाध्य एवं अद्वितीय तत्त्व है।

उदयनाचार्य भी यही कहते हैं। कर्म तो कबका नष्ट हो गया। उससे अपूर्वरूप अतिशयकी उत्पत्ति माने बिना फल कहाँसे होगा? कोई सहस्र-सहस्र यज्ञ-यागादि करे, परन्तु अदृष्टरूप विशेषकी उत्पत्तिके वेदान्त-दर्शनके फलाधिकरणमें जैमिनि मतका ऐसा ही अनुवाद करते हैं। [देखिये, धर्म जैमिनि-रत एव (३।२।४०)] इसके भाष्यमें कहा गया है कि "यदि श्रुति प्रमाण है तो जैसे यह कर्म

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

और उसके फलका श्रुत्युक्त सम्बन्ध सिद्ध हो, वैसी कल्पना करनी चाहिए। कुछ अपूर्व उत्पन्न किये विना यह विनश्वर कर्म अपना फल नहीं दे सकते। अतः कर्मकी कोई सूक्ष्म उत्तरावस्था अथवा फलकी पूर्वावस्था, जिसका नाम अपूर्व है, तर्कसिद्ध है।' परन्तु इस अधिकरणमें भगवान् शंकरने वेदान्त-दर्शनकी भूमिकाके अनुसार कर्माराधित ईश्वरके प्रसादसे ही फलकी सिद्धि मानी है। वह प्रसाद कर्म-जन्य है अथवा अपूर्व-जन्य ? इसमें उनका कोई आग्रह नहीं है। अतः उन्होंने अपूर्वके खण्डन-मण्डनमें अनास्था प्रकट की है।

मीमांसकोंका मत है कि जब कर्मका सांगोपांग अनुष्ठान होता है तब अपूर्व नामक एक अतिशय-विशेष यजमानके आत्मासे सम्बद्ध ही उत्पन्न होता है। वही कालान्तरमें फल देता है। उसके साथ ईश्वरका कोई सम्बन्ध नहीं है और न तो ईश्वर उसका नियन्ता ही है। इसी बातको हम मीमांसक मानते हैं। ईश्वर कोई हो या न हो, उसके खण्डन या मण्डनमें हमारी कोई आस्था नहीं है। वेदान्तियोंका कहना यह है कि कर्माराधित ईश्वरसे ही फलकी प्राप्ति होती है, अपूर्व हो या न हो, हमारी अपूर्वमें कोई आस्था नहीं है। फलितार्थ यह निकला कि मीमांसकोंका अपूर्वमें आदर है और वेदान्तियोंका ईश्वरमें अत्यन्त आदर है।

यह अपूर्व जबतक माना नहीं जायगा, तबतक न यागादि साधन सिद्ध होंगे, न स्वर्गादि फल। यही अपूर्वकी कल्पनाका मूल कारण है। इसे मीमांसाकी भाषामें अन्यथानुपपत्ति कहते हैं। अब यह अपूर्व कहाँ रहता है ? इसका उत्तर है कि यह चाहे स्वाश्रय हो या अन्याश्रय, जहाँ रहकर फल उत्पन्न करनेमें समर्थ हो, वहीं रहता है; ऐसी कल्पना की जाती है। तन्त्र-वार्तिकके श्लोकका यही अर्थ है।

मण्डनमिश्रने भी कहा है—जब कर्मसे उत्पन्न अपूर्व कर्म-समवेत नहीं है, आत्म-समवायी है तो स्वर्गादिका साधन कर्म कैसे हुआ ? इसका उत्तर यह है कि कर्मने ही ऐसी शक्ति आत्मामें आहित कर दी। साधन स्वसमवायी ही होता है—ऐसा कोई नियम नहीं है; क्योंकि वह कार्यानुमेय है, जहाँ रहकर कार्य उत्पादनमें समर्थ हो, वहीं उसका रहना युक्ति-युक्त है। कर्मने ही वह शक्ति आत्मामें डाली है; इसलिए कर्ममें साधनता है।

अच्छा, तो फिर ऐसी कल्पना क्यों न करें कि, फल-प्राप्तिपर्यन्त

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

कर्म ही रहता है। इससे श्रुत्युक्त साधन-फलभावकी संगति बैठ जाती है। जी नहीं, ऐसी कल्पना नहीं कर सकते; क्योंकि कर्म फल-पर्यन्त रहता है—ऐसी कल्पना प्रत्यक्षादि सब प्रमाणोंके विरुद्ध है। अतः दुःसाहसमात्र है। सहस्र-सहस्र श्रुति भी पदार्थके स्वभावको बदलनेमें समर्थ नहीं है। हमारे प्राचीन आचार्योंने क्या ही सुन्दर कहा है कि, हजारों वेद-वचन भी घड़ेको कपड़ा नहीं बना सकते। इसलिए प्रामाणिक पुरुषोंको ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि दूसरे प्रमाणोंकी प्रामाणिकता बाधित न हो और अपना काम भी बन जाय। अतः यजमानमें ही फलका उदय होता है। उसीमें अपूर्वका उदय होता है, उसीमें वह रहता है और फल देनेके बाद वह नष्ट हो जाता है। फलोत्पत्ति होते ही अपूर्वका नाश हो जानेके कारण दुवारा फलकी उत्पत्ति नहीं होती।

अपूर्वकी उत्पत्ति इस प्रकार होती है—जब किसी फलके उद्देश्यसे कर्म किये जाते हैं तब उनके साथ-साथ पूर्वांग और उत्त-रांगका अनुष्ठान भी प्राप्त होता है। शास्त्रोक्त कर्मका अनुसरण करके ही अंगोंका अनुष्ठान होता है। जिस क्रमसे अंगोंका अनुष्ठान होता है उसी क्रमसे अपूर्वकी उत्पत्ति होती है। जिस अंगका अनुष्ठान होता है, उसके अव्यवहित क्षणमें ही अपूर्व उत्पन्न होकर यजमानके आत्मासे समवेत होता है। प्रधान यागके पूर्व जितने अंगानुष्ठान किये जाते हैं और जितने पश्चात् किये जाते हैं, उतने ही अपूर्व उत्पन्न होते हैं। ये अंगजन्य हैं इसलिए इनकी संज्ञा अंगापूर्व है। इस प्रकार प्रधान यागके अनुष्ठानके अनन्तर ही प्रधानसे अपूर्वकी उत्पत्ति होती है। शास्त्रीय भाषामें उसे प्रधानापूर्व अथवा उत्पत्त्यपूर्व कहते हैं। ये सभी अंगापूर्व और प्रधानापूर्व यजमानकी आत्मामें ही समवेत होते हैं। अन्तिम अंगका अनुष्ठान हो जानेपर ये सब अपूर्व मिलकर उसीमें एक विलक्षण परमापूर्व उत्पन्न करते हैं। यहीं तक उनकी स्थिति रहती है। परमापूर्व उत्पन्न होनेपर उनका नाश हो जाता है। यह परमापूर्व ही फलोत्पत्ति-पर्यन्त रहकर और फिर अपना फल उत्पन्न करके विनष्ट हो जाता है। भिन्न-भिन्न फलोंके उद्देश्यसे अनुष्ठित भिन्न-भिन्न कर्मोंसे भिन्न-भिन्न फल देनेवाली शक्तिसे युक्त अपूर्व उत्पन्न होकर यजमानको आत्माके साथ समवेत अर्थात् सम्बद्ध हो जाते हैं। सब अपूर्वोंके एकमें मिलनेपर भी फलोंमें किसी प्रकारका सांकर्य

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अथवा मिश्रण नहीं होता—जैसे, एक ही अच्छे खेतमें एक साथ मिलाकर धान, जौ, तिल और उड़दके बीज बोये जायँ तो भूमिकी नम्रता, खाद, सिंचाई, समय आदिके अनुसार वे अपने-अपने अंकुर ही प्रकट करते हैं, अन्य बीजसे अन्य अंकुरकी उत्पत्ति नहीं होती। धानसे जौ या जौसे धानके अंकुर उत्पन्न नहीं होते। ऐसे ही स्वर्ग, पुत्र, पशु, वृष्टि आदि विविध फलके जनक अपूर्व एक ही यजमानके आत्मामें आहित होनेपर भी फलोत्पत्तिके समय अपने-अपने अनुरूप फलोंको ही उत्पन्न करते हैं, किसी प्रकारका मिश्रण या गड़बड़ी नहीं होती; क्योंकि भिन्न-भिन्न अपूर्व भिन्न-भिन्न शक्तिसे युक्त होते हैं। शक्तियोंका स्वभाव ही वैसा है। वे किसीकी आज्ञा मानकर काम नहीं करती। सत्पुरुषोंका कहना है कि पदार्थ-शक्ति आज्ञाकारिणी नहीं हुआ करती। अतः भिन्न-भिन्न कर्मोंसे उत्पन्न, भिन्न-भिन्न फल देनेवाला, यजमानके आत्मासे सम्बद्ध और फल देकर नष्ट हो जानेवाला अपूर्व निश्चय ही एक पदार्थ है और वह सर्वथा युक्तियुक्त है यही मीमांसकोंकी मर्यादा है।

प्रेम, सेवा और आश्रय

मुनीम जीका अपनी पत्नी और पुत्रके प्रति बहुत प्रेम था। वे जैसे स्वस्थ, प्रसन्न एवं सुखी रहें, इसके लिए मुनीमजी सब कुछ करनेको तत्पर रहते थे। अपने शरीरतककी परवाह नहीं। अन्तरात्माकी आवाज भी अनसुनी कर देते थे। वे किसी सेठकी सेवामें संलग्न थे। बही-खाता झूठा लिखते। सेठजीकी पूँजी बढ़े—इसके लिए झूठ, कपट, बेइमानी भी करते। उनके मनमें कभी-कभी सेठके प्रति शंका होती। वे सोचते कि सम्भव है कि सेठ आगे चलकर मुझे कुछ न दे। तब क्या करेंगे? कानूनका सहारा लेकर राजदरबारमें मुकद्दमा करेंगे। इस प्रकार मुनीमजीकी मनोवृत्ति तीन दिशामें चलती रहती थी। पत्नी-पुत्रसे प्रेम, सेठकी सेवा और राज्यका आश्रय।

अब एक भगवद्-भक्तके बारेमें विचार कीजिये। क्या उसकी मनोवृत्ति भी त्रिमुखी होगी? सर्वथा नहीं। उसका प्रेम भगवान्‌से, सेवा भगवान्‌की और आश्रय भगवान्‌का। जब तीनों भाव एकमात्र भगवान्‌के साथ जुड़ जाते हैं और बिना ध्यान दिये सहजताको प्राप्त हो जाते हैं, तब उसे भक्ति कहते हैं। जिज्ञासुके जीवनमें भी जबतक सेवा शरीरकी, प्रेम परिच्छिन्न अहंसे और बल स्वाध्यायादि जन्य वृत्तिका रहता है, तबतक वह आत्मनिष्ठासे वंचित ही रहता है।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

डायरीके पन्ने

२०. गृहस्थकी उदारता

सेठ श्रीजयदयालजीकी गीतापर टीका 'तत्त्वविवेचनी' लिखी जा रही थी। कुछ महीनोंके लिए मैं उनके निवास-स्थान बाँकुरामें ही रह रहा था। वहाँसे आनेके समय सेठजी और उनके विद्वान् भ्राता श्रीहरिकृष्णदासजी गोयन्दकाने मुझसे कहा—'पण्डितजी। आपके घरमें लड़कीका विवाह होनेवाला है। आप हमारी इस बर्तनकी दुकानमें घुस जाइये और आपको जितना चाहिए उतना बर्तन छाँटकर अलग कर दीजिये। हम आपके साथ भेज देंगे। उनकी यह उदारता देखकर मेरा हृदय भर आया। बर्तन तो मैंने सौ-दो-सौ रुपयोंकी कीमतके ही लिये परन्तु उनसे जो उन्मुक्त हृदय-उदारताकी शिक्षा ली, वह अबतक कभी-कभी याद आ जाती है। किसीको कुछ देना हो तो मुट्ठी बाँधकर नहीं दिया जाता।

२१. आवश्यकता आपको नहीं, हमको है

मैं टीकासहित श्रीमद्भागवतके सम्पादनके लिए वृन्दावनसे गोरख-पुर जा रहा था। विश्रामके लिए मार्गमें रुक गया—गङ्गा-कुटीमें। वहाँसे प्रस्थान करते समय माँ जी दादाको बहुत-से रुपये देने लगीं, दादाने नहीं लिया! मैंने कहा—'माँ जी! गोरखपुरसे आदमी आया है। वह हम सब लोगोंकी टिकटादिकी सब व्यवस्था करता है। हमें रुपयोंकी कोई आवश्यकता नहीं है।' माँ जी बोलीं—'महाराज जी! जब आपको आवश्यकता होगी और मैं दूँगी, तब तो कभी अपने जीवनमें सेवा कर ही नहीं सकूँगी। आवश्यकता तो मेरी है, मेरे हृदयकी है। कुछ सेवा किये बिना मेरा हृदय दुखता है। उस दुःखको मिटानेके लिए मैं देती हूँ। सेवा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

अपने हृदयकी माँग पूरी करनेके लिए की जाती है। दूसरोंकी आवश्यकता पूरी करनेके लिए नहीं।

२२. दृढ़ सङ्कल्पसे आदत छूट गयी

हम लोग गङ्गोत्री-यात्रा करने गये थे। वहाँ यह निश्चय हुआ कि सब लोग कुछ-न-कुछ अपने दोष छोड़ें। हमारे साथ टूण्डलाके रईस बाबू ज्योति प्रसाद भी थे। उस समय उनकी अवस्था सत्तर वर्षकी थी। पचास वर्षसे सिगरेट पीनेका अभ्यास था। दिनभरमें पचास-पचास सिगरेटतक पीते थे। उन्होंने एकाएक सिगरेटके त्यागका दृढ़ निश्चय कर लिया कि 'आजसे सिगरेट नहीं पीयेंगे।' सिगरेट, दियसालाई गङ्गाजीमें फेंक दी। पन्द्रह-सोलह वर्ष हो गये, फिर कभी नहीं पी। सङ्कल्पमें दृढ़ता होनेपर संसारकी ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो छोड़ी न जा सकती हो।

२३. ईमानदारी ऐसी चाहिए

हरिद्वारके कुम्भ मेलेमें आग लग गयी थी। गीताप्रेसकी पुस्तकोंकी दुकान भी जल गयी। बीमा कराया हुआ था। लिखा-पढ़ी करनेपर पूरी कीमत देनेकी मंजूरी मिल गयी। जब प्रेसके संस्थापक सेठ श्रीजयदयाल गोयन्दकाको यह ज्ञात हुआ तब उन्होंने पूछा—'आग लगनेसे पहले कुछ पुस्तकें बिक गयी थीं या नहीं? उनकी कीमत आगमें जल गयी थी या नहीं? ठीक-ठीक मालूम करके उन्होंने जितनी हानि हुई थी, उतने रुपये रखवा दिये और बाकी वापिस करवा दिये। ईमानदारीमें निष्ठा सत्पुरुषका सहज स्वभाव है।

२४. कितनी निर्दयता

कलकत्तेके सेठ जयदयाल कसेराको किसी मुकदमेके सिलसिमें जजकी अदालतमें उपस्थित होना पड़ा। वे वहाँ जाते ही ऊँचे स्वरसे बोल पड़े—'जय जय प्रभु दीनदयाल हरे।' सरकारी वकीलने कहा—'यह न्यायालय है, जोरसे मत बोलो।' कसेराजीने कहा—'मैंने तो सोचा कि यह कोई राम या युधिष्ठिर-जैसे धर्मात्माका न्यायालय है। यहाँ भगवान्का नाम लेनेमें कोई आपत्ति नहीं है। मुझे मालूम होता कि यह रावण, कंस-जैसोंका न्यायालय है तो चुप रहता।'

जज हँसने लगा। उसने कहा—'आप खूब बोलिये।'

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२५. कीमत चुकाओ

सन् ३८ के आसपास गीताप्रेसकी तीर्थयात्रा स्पेशल ट्रेन निकली थी। यात्री दक्षिणमें श्रीरामानुजाचार्यकी लीलाभूमि तोताद्रि गये। वहाँ यह प्रसिद्ध है कि भगवान्‌के तैलाभिषेकका प्रसाद शरीरकी खाजको मिटा देता है। तेलका बड़ा भारी कुण्ड भरा हुआ था। उसपर कोई कीमत नहीं थी। यात्रियोंमें-से बहुतोंने बाजारसे टीन खरीदकर दस-दस, बीस-बीस सेर तक तेल भर लिया दूसरे दिन ट्रेनपर पहुँचनेपर सेठ जयदयालजी गोयन्दकाको सूचना मिली। यात्री इकट्ठे किये गये। उन्होंने व्याख्यान दिया। 'यह अन्याय है, बेईमानी है। प्रसाद इस ढंगसे और इतना नहीं लिया जाता। आप सब कीमत चुकाओ।' उनके आदेशानुसार ही किया गया। उनकी यह न्यायनिष्ठा सचमुच प्रशंसनोय थी और दूसरे लोगोंके लिए एक शिक्षा थी।

२६. मैं ऋण चुका रहा हूँ

भाईजी श्रीहनुमान प्रसादजीके पास एक व्यक्ति आया। 'मेरी बीमार पत्नी अस्पतालमें हैं—सहायता दीजिए' उन्होंने सहायता दी। कुछ दिन बाद, आया—'अस्पतालमें बच्चा हुआ है, सहायता दोजिए।' तब भी दी। कुछ दिन बाद आया—'हालत खराब है, कुछ और दीजिए।' तब भी दो। पाँच-दस दिन बाद आया—'मर गयी, अन्त्येष्टि कैसे करें ?' फिर भी दी। 'घर जानेके लिए किराया चाहिए'। फिर भी दी। किसीने पूछा—'भाई जी! यह कैसा आदमी है? कोई ठग लगता है।' भाई जीने कहा—'मुझे पहले ही दिनसे मालूम है। न पत्नी, न बीमार, न बच्चा, न हास्पिटल, न मृत्यु। परन्तु जब यह मेरे सम्मुख आकर बैठता है, तब लगता है कि इसने पूर्व जन्ममें मुझे कोई ऋण दे रखा था। मैं इसका ऋणी हूँ और वही चुका रहा हूँ।'

भाईजीके मनमें यह भाव ही नहीं था कि 'मैं इसका उपकार कर रहा हूँ।' ठगके प्रति दुर्भावकी तो बात ही क्या!

—अ० सरस्वती

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

जीवन-सन्देश

जबलपुरके पासकी घटना है। नर्मदाके तटपर एक गाँवमें एक अनाथ युवक था। अकेलेपनके कारण वह सांसारिक व्यावहारोंसे उपराम हो गया। साधु हो गया। शिव-पार्वतीकी आराधनामें लग गया। अपने ही गाँवके किसी-न-किसी घरसे रोटी माँगकर खा लेता और अपना सारा समय नर्मदाके किनारे व्यतीत करने लगा।

युवककी तपस्या पूरी हुई। भगवान् शंकरने पार्वतीसहित नन्दीपर सवार होकर उसे दर्शन दिया। शंकरजी बोले--'वत्स! वर माँग।'

'मेरा अभीष्ट मुझे मिल गया नाथ! हाँ, मेरी तपस्यामें गाँवके लोग साझीदार हैं। क्योंकि उनके अन्नसे मैं पला हूँ। यह दर्शन-लाभ उन्हें भी क्यों न हो? मेरे परोपकारियोंको मेरे तपका फल मिलना ही चाहिए।' युवक साधुने निवेदन किया।

शंकर बोले—'एवमस्तु।'

'भगवन्! मैं अभी सभी ग्रामवासियोंको बुला लाता हूँ। आप वचन दीजिए मैं जबतक नहीं लौटूँ तबतक आप यहीं रहेंगे।' साधुने विनती की।

'यहीं रहेंगे' शंकरने आश्वत किया।

वह चला और दौड़ पड़ा, कुछ दूर निकल गया फिर ठिठका और रुक गया। 'अरे! जबतक मैं लौटूँगा नहीं, तबतक वे यहीं रहेंगे, यहीं रहनेका जो वचन दिया है। ग्रामीण तो दर्शन कर ही लेंगे। और वे अब यहीं रहेंगे तो समस्त विश्वका कल्याण होगा। फिर, मेरा क्या काम? भोले मनमें ये विचार उठे और ऊँचे करार-से उसने नर्मदामें एक छलांग लगा ली। सदा-सदाके लिए वह उस अगाध जलहरियोंमें विलीन हो गया।

भगवान् शंकर और पार्वतीके दर्शन लाखोंने किया। कृतकृत्य हुए। आज भी नर्मदाके उस पावन तटपर शंकर-पार्वती नन्दीपर सवार हैं।

अब मन्दिर बन गया है। स्नानार्थियों-दर्शनार्थियोंको प्रेरणा मिल रही है—दूसरोंके लिए जीनेका सन्देश मिल रहा है। यह है भारतीय संस्कृतिका प्रतीक और परोपकारियोंका गौरव।

—वि०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

॥ वेद-भागवत ॥

• सारस्वत पं० श्रीजगन्नाथशर्मा, शास्त्री

न्यायभूषण, विद्याभूषण, झज्जर (रोहतक)

मङ्गलाचरण

श्रीमद्भागवतस्य वेदतुलनां कर्तुं समीहे मुदा
स्वान्तःशान्तिसुखाय जन्ममरणात् पार्थक्यसंसिद्धये।
स्वाध्यायागमवेदपाठकरणान् नश्यन्ति सर्वापदः
श्रीकृष्णाय नमोऽस्तु मेऽनुचरतो भूयो नमः शास्त्रिणः ॥ १ ॥

क्व भागवतविज्ञानं क्व वेदार्थाऽवबोधनम्।
क्व मे मूढमतेर्ध्यानं याति वेदाब्धिमन्थने ॥ २ ॥

ब्रह्मज्ञानरसायनं निगमकल्पद्रोः शुकास्योद्गतं
तत्सत्यं किमु नो मनीषिमणयो द्रष्टुं सदोत्साहिनः।
वेदव्यासकृते सुसंस्कृतमये वेदाश्रयो विद्यते
सुस्पष्टं विदधातुमेव हि मया लेखः सुसम्पाद्यते ॥ ३ ॥

ब्रह्माणं शारदां विष्णुं नराणां नृतमं गुरुम्।
नमस्करोमि साष्टाङ्गं गणेशदत्तशास्त्रिणम् ॥ ४ ॥

वेदभागवतस्याहं जगन्नाथः सतां मुदे।
निबन्धं लिखितुं मूढो लेखनीं हस्त आदधे ॥ ५ ॥

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भागवत

जन्माद्यस्य यतोऽन्वयादितरतश्चार्थेष्वभिज्ञः स्वराट्
तेने ब्रह्म हृदा य आदिकवये मुह्यन्ति यत्सूरयः।
तेजोवारिमृदां यथा विनिमयो यत्र त्रिसर्गोऽमृषा
धाम्ना स्वेन सदा निरस्तकुहकं सत्य परं धीमहि ॥
(१–१–१)

जिस परमात्मासे इस जगत्‌की उत्पत्ति, स्थिति और संहार होते हैं, जो ब्रह्म आकाशादि कार्यपदार्थोंमें अन्वयरूपसे और शशशृङ्गादिमें व्यतिरेकरूपसे विद्यमान है। यद्वा मृत्तिका-सुवर्णादिवत् कारणरूप और घट-कुण्डलादिके समान कार्यरूप है जो सर्वज्ञ स्वतःसिद्ध ज्ञानरूप है, जिस वेदके ज्ञानमें बुद्धिमान् ज्ञानी मनुष्य भी मोहको प्राप्त हो जाते हैं। जिस परमात्माने उस वेदज्ञानको आदि कवि ब्रह्माको मनसे ही हृदयमें प्रकाशित किया। जैसे सूर्यकी किरणमय तेजमें मृगकी जलवुद्धि और काचादिरूप मिट्टीमें जलबुद्धि और जलमें काचादि-बुद्धि आधारकी सत्यतासे प्रतीत होती है। वैसे देहेन्द्रियदेवतारूप सत्त्वरजतमोगुणरूपी सृष्टि जिसकी सत्यतासे सत्यवत् प्रतीत होती है हम सदा उस ब्रह्मको अपने तेजसे प्रकाशमान कपटरहित अर्थात् शुद्धस्वरूप सत्यपरमेश्वरका (धीमहि) ध्यान करते हैं। 'अन्यस्मिन् अन्याऽवभासो विनिमयः।

वेदभागवत

व्यासजीने भागवतका आरम्भ गायत्रीमंत्राश्रित किया है—'सत्यं परं धीमहि' सत्य नाम ब्रह्मका है। यथा 'हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्'। यजुः ४०।१७, 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' तथा 'जन्माद्यस्य यतोऽन्वयात्' यह ब्रह्मसूत्रके आधारपर लिखा है। 'जन्माद्यस्य यतः' जिस ब्रह्मसे इस विश्वकी उत्पत्ति, स्थिति, संहार होता है। यद्वा जिस ब्रह्मसे 'आद्यस्य आकाशस्य' आकाशका आविर्भाव हुआ है। यथा—'तस्मादेतस्माद्वा आकाशः संभूतः, आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः, अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः, ओषधिभ्योऽन्नमन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः' 'छान्दो०', 'तत्तु समन्वयात्' वही ब्रह्म विश्वरूपमें व्यापक रूपसे समन्वित है। 'ईक्षतेर्नाऽशब्दम्' अशब्द-वेदाप्रतिपाद्य माया या प्रधान जगत्‌का कारण नहीं है। क्योंकि वेदके किसी मन्त्रमें माया (प्रधान) को सृष्टिकर्ता नहीं कहा है। 'ईक्षते' यह ईक्षण ब्रह्ममें हुई। 'स ऐक्षत एकोऽहं बहुस्यां

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

प्रजायेय' ईक्षण ब्रह्ममें है, न कि मायामें। माया (प्रधान) को जड़ कहा गया है।

ब्रह्माके हृदयमें वेदोंको प्रकट किया। यथा—'यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्। इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरत् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे'—ऋ–१।१०१।५

जो सम्पूर्ण चराचर जगत्का स्वामी है और जिस (प्रथमः) सबके आदि ब्रह्मने पहले-पहले (ब्रह्मणे) ब्रह्माजीको (गा अविन्दत्) वेदवाणी प्रदान की, जिस सर्वैश्वर्यशाली परमात्माने (दस्यून्) अपने भक्तोंके काम, क्रोधादि शत्रुओंको अथवा भक्त प्रह्लादादिके विरोधियोंको (अधरान् अवातिरत्) नीचे गिरा दिया—नष्ट कर दिया, अतः (मरुत्वन्तं) मनुष्यमात्रके अन्तःकरणमें वास करनेवाले उस परमैश्वर्यसम्पन्न परमात्माको हम (सख्याय हवामहे) मित्रता अर्थात् सहायताके लिए पुकारते हैं। हम भक्तोंको भी दर्शन दे। 'यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदान् प्रहिणोति तस्मै।'—उपनि०, जिस परमात्माने सृष्ट्यारम्भमें पहले ब्रह्माको प्रकट किया और जिसने उस ब्रह्माको ही वेदों अर्थात् वेदमन्त्रोंका ज्ञान प्रदान किया। ब्रह्माजी अथर्ववेदके बहुत-से सूक्तोंके द्रष्टा हैं। तथा च ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता स ब्रह्मविद्या प्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह"—मुण्ड १।१।२

वेद मन्त्र

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद् यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।
तस्मिन्निदं तं च विचैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभुः प्रजासु॥

(यजुः ३२।८ अथ० २।१।१)

परमात्माकी भक्तिसे प्रकाशमान अनन्य भक्त हीं (तत्परमं) उस परमश्रेष्ठ परमात्माको (पश्यत्) ज्ञान और उपासनासे देखता है (यत्र) जिस ब्रह्ममें (विश्वं) समस्त ब्रह्माण्ड (एकनीडं) एकाश्रय अर्थात् एक ही घरमें एकरूप हो जाता है। (तत्) वह सत्यरूप ब्रह्म (गुहानिहितम्) हृदयाकाशकी गुहामें स्थित है। (तस्मिन्) उस ब्रह्ममें (इदं सर्वं) यह सारा जगत् (तम्—एति) प्रलयकालमें लीन हो जाता है। (च) और वह सारा जगत् (वि एति) उत्पत्तिकालमें पृथक्-पृथक्रूप हो जाता है। (सः विभुः) विविध प्रकारकी सृष्टिमें व्याप्त हुआ वह परमात्मा

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

(प्रजासु) प्रजाओंमें (ओतः च प्रोतः) वस्त्रमें ताना-बानाके समान ओतप्रोत हुआ है।

(तुलना)। भागवतमें परमात्माको जगत्का कर्ता, भर्ता, संहर्ता कहा गया है। वेदका प्रादुर्भाव ब्रह्माको परमात्मा द्वारा हृदयमें हुआ। संसारमें प्रायः सबकी दृष्टि भिन्न होनेसे विक्षेप और आवरण शक्तिके होनेसे सद्वस्तु भी असद्वस्तु प्रतीत होती है। शिवस्वरूप, सुन्दर, सत्यस्वरूप ब्रह्मका ध्यान कहा है। वेद और उपनिषदोंमें परमात्माको कर्ता, भर्ता, संहर्ता कहा है। वेदका प्रादुर्भाव पहले ब्रह्माजीको हुआ। ब्रह्माने अपनी मानसिक प्रजाको वेदोपदेश दिया। परमात्मा सारे संसारमें वस्त्रमें ताने-बानेके समान व्याप्त हुआ है।

भागवत

धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो निर्मत्सराणां सतां
वेद्यं वास्तवमत्र वस्तु शिवदं तापत्रयोन्मूलनम्।
श्रीमद्भागवते महामुनिकृते किं वा परैरीश्वरः
सद्यो हृद्यवरुद्ध्यतेऽत्र कृतिभिः शुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्॥

(१।१।२)

श्रोता-जनोंकी प्रवृत्तिके लिए कर्मज्ञान और देवता-प्रतिपादक शास्त्रोंसे भागवतकी श्रेष्ठता इस श्लोकसे जानी जाती है। इस महामुनि व्यास द्वारा रचे हुए श्रीमद्भागवतमें मत्सरसे रहित साधुओंका निष्काम केवल ईश्वराराधनरूप धर्मनिरूपण किया जाता है। इसमें वास्तवरूपसे आध्यात्मिक, आधिभौतिक, आधिदैविक तीनों तापोंको उन्मूलन करनेवाला सुखदायी आत्मतत्त्वज्ञान निर्यत्न जाना जा सकता है। (इतरैः) अन्य शास्त्रोंसे परमात्मा बड़े यत्न और विलम्बके अनन्तर हृदयारूढ होता है। भागवतचरितके श्रवणकी इच्छावाले पुण्यात्माओंके हृदयमें श्रवणमात्रसे ईश्वर मनोवृत्तिमें स्थिर हो जाता है। अतः परमात्माके चरित्रको श्रवण करना चाहिए।

वेदभागवत

श्रावयेदस्य कर्णा वाजयध्यै जुष्टामनु प्रदिशं मन्दयध्यै।
उद्वा वृषाणो राधसे तु विष्मान् करन्न इन्द्र सुतीर्थाऽभयञ्च॥

(ऋ० ४।२९।३)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हे भगवद्भक्त मनुष्य ! (वाजयध्यै) अपनी परमात्म-भक्तिके बलको वृद्धिके लिए (जुष्टां दिशं मन्दयध्यै) प्रत्येक दशामें अर्थात् धनी या निर्धनतावस्थामें भी परमात्माकी भक्तिसे आनन्दित होनेके लिए (अस्य कर्णा-कर्णौ) इस जिज्ञासु भगवद्भक्तके कानोंको (श्रावयेत्) भगवच्चरित सुना दे। वह भी भगवन्नाम सुनकर परमात्म-भक्तिमें लग जावे। (इन्द्रः उद् वा वृषणाः) कृपादृष्टिकी वर्षा करता हुआ परमात्मा (तुविष्मान्) सबसे बलवान् (नः राधसे) हमारे भक्त्यात्मक धनके लिए (सुतीर्थः) संसार-सागरसे पार करनेवाले उत्तम तीर्थके समान (अभयं करत्) संसारमें जन्म-मृत्युके भयसे निर्भय कर देवे॥ ३॥ तथा च श्रृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य सुवतो नरा मध्य सौमस्य पीतये। (ऋ० ८।८५।४)

दोनों स्त्रीपुरुषो (कृष्णस्य कर्मणि षष्ठी द्वितीयार्थे षष्ठी कृष्णम्) श्रीकृष्णके चरित्रको स्तुति करनेवाले स्तोताके (हवं) भगवन्नाम-कीर्तन निमित्त आह्वान अर्थात् बुलावेका (मध्वः सोमस्य) अतीव मधुर ब्रह्मानन्दके रसको (पीतये) कानों द्वारा पान करनेके लिए (श्रृणुतम्) ध्यान लगाकर सुनो, जिससे तुम्हारा परलोक ठीक होगा॥ ४॥

इस मन्त्रका ऋषि कृष्ण है और अश्विनौ (स्त्री-पुरुष) देवता है।

(तुलना) भागवतमें कर्मकाण्डज्ञान और देवताप्रतिपादक शास्त्रोंसे विशेष भागवतमें भगवद्भक्तिका मुख्यांग श्रवण-शक्तिको माना है। 'श्रवणं-कीर्तनं विष्णोः' नवधा भक्तिप्रतिपादक श्लोकोक्त्यनुसार 'श्रवण'को प्रधानता दी है। अतः भगवच्चरितके सुननेसे भगवान्के चिन्तनमें मन लग जाता है। वेदमें भी भगवद्भक्ति-प्राप्तिके लिए एक दूसरेको भगवच्चरित सुनने-सुनानेका उपदेश दिया है। वेदनानुसार भी पहले भगवच्चरितके सुनने-सुनानेकी आज्ञा है। इसके अनन्तर कीर्तन, स्मरण, ध्यानसे तद्रूपताकी प्राप्ति हो सकती है।

भागवत

नैमिषेऽनिमिषक्षेत्रे ऋषयः शौनकादयः।
सत्रं स्वर्गाय लोकाय सहस्रसममासत॥
(१।१।४)

देवक्षेत्र नैमिष वनमें शौनकादि ऋषि स्वर्गलोक अर्थात् मुक्तिधामकी प्राप्तिके लिए हजार वर्ष अर्थात् बहुत समयमें समाप्त होनेवाले यज्ञको करनेके लिए एकत्र बैठे थे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रं बृहन्तमृष्वमजरं युवानम् ।
यस्य प्रिये ममतुर्यज्ञियस्य न रोदसी महिमानं ममाते ॥

(ऋ० ३।३२।७)

(यज्ञि यस्य यस्य) यज्ञमें पूज्य जिस इन्द्र अर्थात् सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्माकी महिमाको (महिमानं प्रिये रोदसो) परम प्रिय आकाश और पृथिवीके वासी प्राणी (न ममतुः) तोल-माप अर्थात् समानता नहीं कर सकते (न ममाते) नहीं कभी माप सकेंगे । (वृहन्तम् ऋष्वम् अजरम्) सबसे महान् और श्रेष्ठ सर्वव्यापक, जराहीन (युवानम्) नित्य तरुण (वृद्धम्) गुणोंमें सबसे बढ़े हुए (इन्द्रम्) सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्माको (नमसा) साष्टांग नमस्कार द्वारा (यजामः) पूजनके लिए बैठें । अर्थात् हम परमात्माकी प्रसन्नता द्वारा उसको कृपासे मुक्तिको प्राप्त होवें । तथा च—

सहस्रं साकमर्चत परिष्टोभत विंशतिः ।
शं तै नमन्वनो नवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननुस्वराज्यम् ॥

(ऋ० १।८०।९)

हे मुमुक्षु जनो ! (विंशतिः साकं) बीसों भक्त मनुष्य एक साथ मिलकर ही (सहस्रं) हजार वर्षतक अर्थात् दीर्घ समयतक होनेवाले यज्ञमें परमात्माका कीर्तन और पूजन करते रहो और (परिस्तोभत) सब प्रकार अर्थात् एकाग्र मनसे उसके यशकी शोभाका वर्णन करो । (शता एनम् अनु अनोनवुः) सौ वर्षीय समाप्तिवाले यज्ञ (कथाकीर्तन) में सैकड़ों भक्त मिलकर बार-बार प्रभुको पूजकर उसे नमस्कार करो और प्रसन्नताकी प्रार्थना करो । (इन्द्राय ब्रह्म उद्यतं) सर्वैश्वर्यसम्पन्न परमात्माकी प्रशंसाके लिए स्तुति करनेमें उद्यत रहो । (अनु स्वराज्यम् अर्चत) परमात्माका पूजन और ध्यान करनेवाले मुमुक्षु पुरुष स्वराज्य अर्थात् मुक्तिधामको प्राप्त होते हैं ।

(तुलना) भागवतमें कहा है, देवक्षेत्र नैमिष वनमें शौनकादि बहुत-से ऋषि-मुनि हजार वर्षमें समाप्त होनेवाले दीर्घ-सत्रके लिए एकत्रित हुए । परमात्माकी पूजा द्वारा हमारी मुक्ति होवे, ऐसा निश्चय किया । वेदमें यह आज्ञा दी गयी है, हजारों ऋषि-मुनि सैकड़ों वर्षोंतक मिलकर परमात्माका पूजन करते रहें तो पुनः मुक्तिधाम अर्थात् स्वराज्यको प्राप्त होंगे ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भागवत

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे।
अहैतुक्यप्रतिहता ययात्मा सम्प्रसीदति॥
(१।२।६)

भक्तजनोंका यही परम धर्म है। कर्मके फलकी इच्छासे रहित और काम, क्रोध, लोभादि शत्रुओंसे न रुकनेवाली भक्ति परमात्मामें लगी रहती है। जिस निष्काम भक्तिके द्वारा साधकका मन प्रसन्न होता है।

वेदभागवत

स यो न मुहे न मिथू जनोभूद् समन्तु नामा चुमुरिं धुनिं च।
वृणक् पिप्रुं शम्बरं शुष्णमिन्द्रः पुरां चौत्न्याय शयथाय नू चित्॥
(ऋ० ६।१८।८)

(यः जनः) जो मनुष्य (मिथू) मिथ्यावादी अर्थात् सांसारिक भोग-पदार्थोंको अच्छा समझनेवाला (न भूत्) नहीं होता। (स जनः न मुहे) वह भक्त मनुष्य सांसारिक पदार्थोंकी बाह्य शोभापर मोहित नहीं होता। अर्थात् उसका प्रेम एकाग्र मनसे ब्रह्ममें लगा रहता है। (समन्तु नामा इन्द्रः) पूर्ण सत्यभावसे परमात्माको माननेवाले भक्तका जीवात्मा (चुमुरिम्) सर्वेन्द्रियस्वामी अर्थात् सब इन्द्रियोंके विषयोंके ग्राहक मनको तथा (धुनिं च) हिला देनेवाले काम, क्रोधादि विषय रूपी शत्रुको (पि प्रुम्) सबको पीस देनेवाले (शम्बरम्) बलवान् इन्द्रियग्रामको (शम्बरस्य बलनामसु पाठः नि० २।९) (शुष्णम्) शरीरको शुष्क करनेवाले यक्ष्मादि रोगको (पुराम्) इन शत्रुओंके निवास-स्थान वाक्पाणिपादादि दशेन्द्रियोंके वासस्थानोंके (चौल्याय) गिरा देनेके लिए अर्थात् इन्द्रियोंकी उद्धतताको नष्ट करनेके लिए (शयथाय) इन इन्द्रियोंको शयन करा देनेके लिए (नू वित् वृणक्) सदा सिद्धहस्त होता है। ऐसा भगवद्भक्त निष्काम भक्ति करनेसे जीवन्मुक्त हो जाता है।

(तुलना) भागवतमें कहा है जो मनुष्य किसी विशेष हेतुसे रहित काम, क्रोधादि विषयोंसे रहित होकर निष्काम भक्ति करता है। ऐसा निष्काम भक्त परमात्माका सेवक कहा जाता है। वेदमें भी यही कहा गया है। जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोहसे पृथक् हुआ इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त हो जाता है, अर्थात् इन्द्रियाधीन नहीं रहता, अहर्निश भगवद्भक्तिमें मस्त रहता है, वही निष्काम भक्त होता है। ●●●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महाराज श्री के पत्र

सप्रेम नारायण-स्मरण

प्रिय द्वारकादासजी !

सप्रेम नारायणस्मरण। आपका पत्र मिला। आपकी श्रद्धा-भक्ति, भगवत्प्रीति तथा भगवत्प्राप्तिकी लालसासे प्रसन्नता होती है। आप अपने लक्ष्यकी प्राप्तिमें सफल हों।

आपके प्रश्नोंके उत्तर इस प्रकार हैं :—

प्रश्न १. भगवान् जिस हृदयमें प्रकट होते हैं, क्या पहले वहाँ अन्तर्दृष्टि देते हैं ?

उत्तर—पहले वहाँ अपनेमें प्रेम देते हैं। दृष्टिकी अपेक्षा प्रेमका महत्त्व अधिक है। प्रेमीको दृष्टि मिलती है।

प्रश्न २. श्रीरूप गोस्वामीजी कहते हैं कि हरिनाम लेनेवालेका दुःखमय प्रारब्धका भोग बिना भोगे ही नष्ट हो जाता है। यह कैसे सम्भव है ?

उत्तर—यह ऐसे सम्भव है कि जब भगवत्प्राप्तिके लिए दुःख होने लगता है तब संसारी वस्तुओंके संयोग-वियोगसे दुःख नहीं होता अर्थात् प्रारब्धजन्य दुःखका रसायनीकरण हो गया। अब वह भगवान्के लिए होने लगा। दुःखकी दिशा बदल गयी। दुःख भी साधन हो गया। उसकी स्मृति भी सन्तुष्टि देने लगी।

प्रश्न ३. 'शालग्राम-शिलाके पूजकको पातक स्पर्श नहीं करते'—गर्ग-संहिताके इस कथनका गूढ़ार्थ स्पष्ट करें। क्योंकि ब्रह्मज्ञान एक ही जन्ममें नहीं होता फिर पापसे छूटना कैसे सम्भव है ?

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उत्तर—शालग्रामकी पूजा करनेवाला ऐसे मार्गमें पड़ गया जहाँ जानेपर पाप और दुःख दोनों सर्वथा मिट जाते हैं। भविष्यमें भी पाप और दुःखकी निवृत्ति होती है। उसका साधनकालमें ही आरोप करके वह बात कही गयी है। कहीं पहुँचनेके लिए ट्रेन या प्लेनमें बैठकर यह सोचा जाता है कि अब पहुँच गये। साधनमें फलदशाकी भावना साधनके प्रति आस्थाको दृढ़ करती है।

प्रश्न ४. अजामिलके जीवनमें पहले सदाचार, फिर दुराचार, फिर सदाचार और सत्संगके द्वारा ईश्वर-प्राप्ति हुई। जीवनमें इस प्रकारके उतार-चढ़ाव क्या प्रारब्धका ही खेल है?

उत्तर—साधकके जीवनमें प्रारब्धकी कल्पना उतनी उपयोगी नहीं है। उसे अपने प्रयत्नमें त्रुटि स्वीकार करनी चाहिए। उस त्रुटिसे बचने और उसे मिटानेका प्रयास करना चाहिए! गिरना पाप नहीं, गिरकर न उठना पाप है। यदि गलती हो ही जाय तो उसे प्रारब्धके सिरपर डालकर आगे बढ़ना हितकारी है। साधनके जीवनमें प्रारब्ध नहीं, पौरुष है। सिद्धके जीवनमें पौरुष नहीं है, प्रारब्ध है।

प्रश्न ५. शौचके हाथ मिट्टीसे धोने और साबुनसे धोनेमें अन्तःकरण शुद्धिपर किस प्रकार अच्छा या बुरा प्रभाव पड़ता है?

उत्तर—मिट्टीसे हाथ धोना शास्त्रोक्त है। उसमें वासनाका समावेश नहीं है। साबुनसे हाथ धोनेमें अपनी विशेष सुविधा होनेके कारण वासनाका समावेश है। इसलिए मिट्टीसे हाथ धोना अन्तःकरण-शुद्धिका साधन है, साबुनसे हाथ धोना नहीं। शासन मनको नियन्त्रित करता है। सुविधाका लोभ मनको उच्छृङ्खल करता है।

●●●

प्रभु ईसाकी ललकार

तुम पात्रोंके बाह्य भागको साफ करते हो आन्तर भागको नहीं। तुम्हारा हृदय तमाच्छन्न है, अशुद्ध है। बाहर तुम्हारा धार्मिक आडम्बर है, परन्तु अन्तर कपट एवं अधर्मपूर्ण है। अन्तर शुद्ध होनेसे बाहर भी शुद्ध हो जायगा। कहते हो परन्तु स्वयं करते नहीं। तुम सब भाई हो। तुम्हारा स्वामी परमात्मा है। वह एक है। पूर्ण हृदयसे उससे प्रेम करो। ●●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

न्यूयार्कको इम्पायर विल्डिंग और साधना

★ श्री हरिकिशनदास अग्रवाल

अमरिकाके न्यूयार्कमें, एक १०२ मंजिलकी विल्डिंग है, जिसका नाम इम्पायर विल्डिंग है। उसकी एक लिफ्ट बहुत तेज चलती है जो ४० मंजिल तक पहुँचती है।

एक बार ऐसा हुआ कि वह लिफ्ट फेल हो गयी, वहींके एक निवासीकी एक मित्र मण्डलीको उसी लिफ्टसे ४०वीं-मंजिलपर जाना था, किन्तु उन्हें लिफ्टके फेल हो जानेके कारण जीना चढ़ना कष्टदायी प्रतीत हो रहा था, वे ५–७ मित्र थे। जब उन्हें यह चढ़ना अति कष्टप्रद लगा तो उन्होंने एक हल निकाला कि—हरेक एक-एक कहानी सुनाये, ताकि हम कहानी सुनते-सुनते ४० मंजिल चढ़ सकें, और उसका पता न चले।

वे सब कहानी सुनते-सुनते ३९ मंजिल चढ़ गये, जब एक मंजिल बाकी रह गयी तो उन्होंने अन्तिम मित्रसे कहानी सुनानेका आग्रह किया, 'अब तुम अपनी कहानी सुनाओ।' मित्र बोला, 'मेरी कहानी तुम लोग नहीं सुनो तो ही अच्छा रहे।' किन्तु मित्रोंने आग्रह किया 'हम कहानी जरूर सुनेंगे।' वह बोला, 'मेरी कहानी एक भयंकर कहानी है, वह कोई सरल कहानी नहीं है।' इससे मित्रोंकी उत्सुकता और प्रबल हो गयी; क्योंकि—कहानीको रुचिकर बनानेमें ग्रन्थियाँ ही पूरा काम करती हैं। वे हठपूर्वक सुननेका आग्रह करने लगे। मित्रने कहानी सुनाते हुए कहा, 'मित्रो! बड़े खेदकी बात है कि—हमारे इस फ्लैटकी चाभी मुझसे घरपर ही छूट गयी है, जिसके लिए फिर हम सबको

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उतरना 'और फिर चढ़ना पड़ेगा।' यह थी उन मित्रोंको कहानी जो कहानियोंके सहारे अपना भाग तै करना चाहते थे।

हमारो कहानी भी इससे कुछ मिलती-जुलती-सी ही है। हम औरोंकी कहानियाँ तो सुनते रहते हैं किन्तु हमें अपनी जीवनरूपी चाबीका पता ही नहीं है। औरोंकी कहानी सुनना भी यही है कि—हम औरोंकी व्यर्थ वार्तामें जीवन व्यतीत कर देते हैं। 'अमुक मनुष्य ऐसा है, 'उसने यह किया, उसमें ये दोष हैं' इत्यादि बातोंकी चर्चामें हमारी जीवनरूपी चाबी खो जाती है और हम बार-बार जनमते तथा मरते हैं। न्यूयार्कके उन मित्रोंकी तरह जो चावीको खोकर सीढ़ियाँ चढ़ रहे हों, उन्हींकी तरह सीढ़ियाँ चढ़ना व उतरना जीवनका लक्ष्य नहीं है, जीवनका लक्ष्य तो मंजिल-पर पहुँचना है। जब हम मंजिलपर पहुँच जाते हैं, तो सीढ़ियाँ बेकार हो जाती हैं, पर यदि हम सीढ़ियोंपर ही रहें, तो मंजिलतक कभी भी नहीं पहुँच सकते। सीढ़ियाँ मंजिल-तक पहुँचनेके लिए हैं। इसलिए इस जगत्में हम जो भी कुछ करें, लक्ष्यकी पूर्तिके लिए ही करें। बातं भी हमारी लक्ष्यको लेकर ही हों। व्यर्थके चिन्तन व वार्तालापमें समय व्यतीत न करें। हम अन्योंकी कहानी सुन-सुनाकर उन्हीं-जेसा बनना चाहते हैं, जिसका परिणाम यह होता है कि वह तो हम हो नहीं पाते, पर जो होनेके लिए हैं, उससे भी वंचित रह जाते हैं। हमारे लक्ष्यकी चाबो खो जाती है और हम जन्म-मरणके चक्करमें पड़ जाते हैं। अतः हमें चाहिए कि—हम अपने जोवनके लक्ष्यरूपो मंजिलकी चाबी कहीं भो न भूलें। सदा जीवनके लक्ष्यपर दृष्टि रखें।

●●

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सन्त नामदेव

• श्रीयशवन्त बलवन्त क्षीरसागर

सन्त नामदेव महाराज सन्त ज्ञानेश्वरजीके समकालीन श्रीपंढरीनाथके महान् भक्त थे। आपका जन्म पंढरपुरमें सन् १२७०में कार्तिक शुक्ल एकादशीको हुआ था। १३५० में आपने देह विसर्जित किया। लगभग ८० बरसोंका आपका जीवन भगवद्भजन, सन्त-समागम, अभंग-लेखन, कीर्तनसे भरा हुआ था। एक कोटि अभंग रचनेका आपका सङ्कल्प था।

डॉ० रामभाऊ रानाडे नामके एक साक्षात्कारी सत्पुरुष निम्बाल (जिला विजापूर) में हालमें हुए हैं। उन्होंने महाराष्ट्रके सन्तोंके तत्वज्ञानमें आस्तिकता-पूर्वक बहुत संशोधन किया है। वे लिखते हैं कि महाराष्ट्रमें नामस्मरणका महत्त्व नामदेवजीने सबसे अधिक गाया है।

सन्त नामदेव गृहस्थाश्रमी थे। उनके मूलपुरुष मराठवाडा (म० प्र०) के रहनेवाले थे। उनके जन्मके पूर्वकी दो-तीन पीढ़ियाँ पंढरपुरमें निवास करती थीं। सन्त नामदेवजीके पिताजीका नाम दामा शेटी और माताजीका गोणाई था। वे शीपी थे।

पिताजी दामाशेटी भी ईश्वर-भक्त थे। पंढरीनाथके कृपा प्रसादसे उन्हें नामदेवकी प्राप्ति हुई थी। (कई जगह नामदेव अनाथ बालककी तरह इस दम्पतिको मिले थे, ऐसा भी वर्णन मिलता है।)

अपने जन्मके बारेमें एक जगह नामदेवजी लिखते हैं, 'मैं शीपीके कुलमें पैदा हुआ हूँ, लेकिन सदाशिवमें मेरी भक्ति है। रात-दिन तो मैं कपड़े सीता हूँ, लेकिन श्रीविट्ठलकी 'अंगी' (अंगरखा) सीकर मैं सचमुच धन्य होगया।'

मराठी भाषामें आपके २३७० अभंग उपलब्ध हैं। ५०-६० अभंग

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

हिन्दीमें भी मिलते हैं। कहते हैं कि आपके कुछ अभंग 'ग्रन्थसाहब' में अन्तर्भूत किये गये हैं। इन अभंगोंके द्वारा सन्त नामदेवजीके और उनके परिवारके जीवनका, उन्हें मिले हुए सन्तोंका, उन्होंने श्रीज्ञानेश्वरजीके साथ की हुई यात्राका, श्रीविट्ठलके साथ हुए उनके संवादोंका, उनकी अविचल नाम-निष्ठाका समग्र दर्शन होता है। श्रीकृष्ण भगवान् और श्रीरामचन्द्रजीके चरित्र भी उन्होंने अपने अभंगोंमें विस्तृत रचे हैं।

सन्त नामदेवजी जन्मतः भगवद्भक्त थे। बाल्यावस्थामें श्रीविट्ठल भगवान्‌को सचमुच नैवेद्य खिलानेवाली उनकी कथा सर्वश्रुत है। इस भक्तिके कारण उनका अपने व्यवसायमें दिल नहीं लगता था। उनके माता-पिता और पत्नी उनपर नाराज भी थे।

उनकी माँ गोणाई कहती हैं, 'मैंने तुझे नौ महीने पेटमें धारण किया और तू आज हमें मानो अरण्यमें छोड़ दे रहा है। सगे-सम्बन्धियोंको छोड़कर तू तो निर्लज्ज बना है, सब संसारकी होली कर रहा है।'

पिताजी दामाशेटी एक अभंगमें कहते हैं—'मेरी अब थोड़ी आयु शेष है। मैं कल्पना करता था, तू हमारा नाम चलायेगा लेकिन तुमने तो यह 'अच्छा' मार्ग ढूँढ़ निकाला!'

पत्नी राजाई कहती है—'कौपीन पहनकर आप तो गुसांई बन गये, अब हमें कौन देखेगा? सुखी संसारको बारह रास्तेपर बिखेरकर आपने जगत्‌में नाम तो खूब कमाया! मैं आपसे विनती करती हूँ, क्या आपमें हमारे प्रति कुछ भी करुणा नहीं है।

सन्त नामदेवजीकी वृत्ति तो भगवान्‌में लगी थी। वे अपनी माँसे कहते हैं—'माँ, सुन, नागनाथमें श्रीसद्‌गुरुका दर्शन होनेके बादसे मुझे श्रीविट्ठलका छन्द लग गया है और इस संसारके सम्बन्ध टूट गये हैं। हाथमें टाल (छोटी झांझ) लेकर भगवान्‌के सम्मुख नाचनेमें मुझे बहुत सुख मिलता है। इस शरीर, घर-संसारसे उद्विग्न होकर तो मैं श्रीगोपालके शरणमें गया हूँ। तू अब मेरी चिन्ता मत कर। मुझे जिलानेवाला वह पांडुरंग हमेशा समर्थ है।'

श्रीनामदेवजीका विट्ठलके साथ खूब घनिष्ठ सम्बन्ध था। प्रेम-कलह भी होता था। एक अभंगमें श्रीविट्ठलसे नामदेवजी कहते हैं 'मेरे जन्मसे तो मुझे आपने अपनी सेवामें लिया है और अब क्या

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

संसारमें डालना चाहते हैं ? अगर आप ऐसा करेंगे तो मैं पंढरी (पंढरपुर) छोड़कर चला जाऊँगा।

लेकिन इस अवस्थामें भी सन्त नामदेवजीकी भक्ति सद्गुरुका पावन स्पर्श न होनेसे मानो अधूरी थी। कहते हैं, कि भगवान् हमारे हाथोंसे खाते हैं, यह अभिमान उनमें विद्यमान था।

सन्त-समागमसे लाभ

एक दिन सन्त नामदेव आलन्दीमें सन्त निवृत्तिनाथ, सन्त ज्ञानेश्वर आदिसे मिलने गये। मूर्तिमान् श्रीपंढरीनाथका प्रेम ही सन्त नामदेवके रूपमें घर आया है, इस भावसे ज्ञानेश्वरादि सभीने प्रदक्षिणा करके सष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम किया। लेकिन नामदेवजीने किसीको प्रणाम नहीं किया।

सन्त ज्ञानेश्वर और दूसरे भाई तो कुछ बोले नहीं, लेकिन छोटी बहन मुक्ताबाईको यह सहन नहीं हुआ। सन्त मुक्ताबाई नामदेवजीसे कहती हैं—

'भगवान्का अखण्ड सहवास मिलनेपर भी तुम्हारा अभिमान नष्ट नहीं हुआ! तुम परब्रह्ममें खेलते हो लेकिन अन्धे ही मालूम पड़ते हो। चौदह सौ साल तप करनेवाले चांगदेव-जैसे तुम भी 'खाली' मालूम पड़ते हो! अगर सन्तोंका सम्मान करना नहीं आता, तो भगवान्के पास रहनेसे क्या लाभ ?'

सन्त निवृत्तिनाथ (बड़े भाई) बीचमें बोले—'इन नामदेवजीपर तो भगवान् लुभाता है, इन्होंने अपने प्रेमसे भगवान्को वशमें कर लिया है। इनसे इस तरह बात करना उचित नहीं।'

तो भी मुक्ताबाईने सुना-अनसुना कर दिया। उन्होंने (मुक्ताबाईने) सन्त गोरा कुम्हारको परीक्षा करनेके लिए बुलाया। सब सन्त एक साथ बैठे थे। गोरोबा 'थपनी' से एक-एक का सिर थापने लगे। सभीने सह लिया। सिर्फ नामदेवजी चौंक उठे और क्रुद्ध हो उठे।

गोरोबाने कहा, "यह मटका (घड़ा) बिल्कुल कोरा रह गया है। तनिक कहीं भी जला नहीं।' एक अभंगमें इस प्रसंगका वर्णन करते हुए नामदेवजी व्यंगार्थसे कहते हैं—

'वाह, सन्त-समागमसे मुझे लाभ तो बड़ा हुआ! मेरा सिर लकड़ीसे फोड़कर मुक्ताबाईने कितना मेरा सम्मान किया।'

यही उनके जीवनके परिवर्तन-का क्षण था।

पंढरपुर लौटकर नामदेवजी बच्चोंकी तरह पांडुरंगके चरणोंमें

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

लिपट गये। वे पंढरीनाथसे कहते हैं, 'मेरा बड़ा पूर्व-पुण्य है कि मैं आपके चरणोंका पुनः दर्शन कर सका नहीं तो वे मुक्ताबाई आदि लोग तो मुझे जानसे मार डालते !'

श्रीविट्ठलने नामदेवको सद्गुरु-की शरण लेनेकी आज्ञा की। श्रीविट्ठलने उनसे कहा—

'तुम्हारी आँखोंमें अज्ञानकी नींद थी। वुद्धिमें भ्रान्ति थी। इसलिए सन्तोंका होनेवाला वड़ा लाभ तुम खो वैठे। अब एक ही मार्ग है। नम्रतासे तू सद्गुरुकी शरण ले। उनकी अल्प कृपासे ही तुझे मेरा सर्वत्र दर्शन होगा।' श्रविट्ठलने उन्हें सद्गुरुके चिन्ह वताये।

पंढरीनाथके आदेशानुसार नामदेवजी नागनाथ (बार्सीमें) गये। वहाँ एक बूढ़ा कोढ़ी शिवलिंगपर पैर रखकर सो रहा था। नामदेवजीने उसे डाँटा। तो वह वृद्ध बोला 'मैं तो वृद्ध हूँ, मेरी इन्द्रियाँ मेरे वशमें नहीं हैं। तुम्हीं मेरे पाँव उठाकर दूसरी जगह रख दो। नामदेवने उसका पाँव उठाया, किन्तु जहाँ रखते वहीं शिवलिंग उत्पन्न हो जाता। नामदेवजी जान गये कि यही श्रीबिसोबा खेचर हैं जिनका उपदेश ग्रहण करनेके लिए पाण्डुरंगने भेजा था। वे उनके चरणोंमें नम्रतासे लोट गये।

बिसोबाखेचरजी नामदेवजीको उपदेश करते हैं, 'नामदेव, जबतक मैं और मेरा नहीं टूटता तबतक आत्माराम मिले कैसे ? परम-सुखके लिए तुम व्याकुल हो, लेकिन वह सुख तो तुम्हारे पास ही है। यत्नसे लाभ उठाना चाहिए।' उन्होंने नामदेवजीको नाम-मन्त्र दिया। नामदेवजी लिखते हैं, 'गुरुदेवने मुझे मन्त्रसे विदेही बनाया और गुरुदेव और ज्ञान एक ही वस्तु हैं, इस सत्यका दर्शन कराया।'

नामके सम्बन्धमें श्रीविसोवा-खेचर नामदेवजीसे कहते हैं, 'वाणीसे 'मुकुन्द' नाम लेनेसे पर्वतके समान पाप भी नष्ट हो जाते हैं। अगर नाम-साधन पूर्ण होगा, तो प्रपंचका भान नहीं रहेगा। यह गुह्य बात मैं तुझे कहता हूँ।'

'सब कालमें और सभीमें आत्मा पररिपूर्ण है, यह भाव तुम्हारे मनमें वना रहे। सन्तोंके चरणोंमें साष्टाङ्ग दण्डवत् किया करो। नाम ही सच्चा सुख है। यह नाम साथमें ले जाओ और विठ्ठल-नामसे तीनों लोक भर दो।'

अपने प्रियतम गुरुदेवका यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

उपदेश नामदेवजीने आजीवन साथक किया।

गुरूपदेशके पश्चात्

गुरूपदेशके पश्चात् नामदेवजी की वृत्ति ही परिवर्तित हो गयी। नामदेवजी एक अभंगमें कहते हैं— 'मेरे गुरुदेवने मुझे यह बताया है कि ईश्वरके सिवा कहीं खाली जगह है ही नहीं। इस ईश्वरका दर्शन उन्होंने मुझे करा दिया है। मुझपर उनके अनेक उपकार हैं। मेरा जन्म-मरण हटाकर उन्होंने मुझे आनन्दके अलङ्कार पहनाये हैं। इन गुरुदेवके चरणोंको मैं कभी नहीं छोड़ूँगा। क्या चमत्कार है, कि इस नाशवान् देहको गुरुदेवके चरणोंमें समर्पित कर देनेसे हमारे हाथोंमें तत्काल मोक्ष ही आता है। गुरुचरणोंका यह बड़ा लाभ है कि मोक्ष हमारा सेवक बन जाता है।'

श्रीविसोबा खेचरजीके उपदेशके बाद पांडुरंगने नामदेवकी परीक्षा लेनेके लिए कुत्तेका रूप धारणकर उनकी रोटी चुरा ली। लेकिन नामदेव, बिना घीकी रोटी खानेसे शायद कुत्तेको अपच होगा, इस आशंकासे, कुत्तेमें भगवान्को देखकर, उसके पीछे घी लेकर दौड़ने लगे।

इसी स्थानपर परीसा भागवतका आख्यान भी उद्धृत किया जाता है।

परीसा भागवत नामके पंढरपुरके एक ब्राह्मण श्रीरुक्मिणी देवीके बड़े भक्त थे। श्रीरुक्मिणीदेवीने प्रसन्न होकर उन्हें एक पारसमणि (मराठीमें 'परीस' बोलते हैं) दिया था। जिससे उनकी जीविका चलती थी।

एक दिन उस ब्राह्मणीने दयाबुद्धिसे वह पारसमणि श्रीनामदेवकी पत्नीको दिया। पत्नीने उसके स्पर्शसे थोड़ा सोना बनाकर घरमें कुछ ठाटबाट किया। नामदेवजीको जब पता लगा तब उन्होंने पारसमणि लेजाकर चन्द्रभागामें फेंक दिया। जब परीसा भागवत अपना पारसमणि वापस लेनेके लिए आये तब नामदेव उन्हें लेकर चन्द्रभागा नदीपर गये और वहाँ एक डुबकी लगाकर दो हाथोंकी अञ्जलिमें बहुतसे पत्थर बाहर निकाला। परीक्षा करनेके बाद मालूम पड़ा कि उनमें-से हर एक पत्थर पारसमणि ही था। परीसा भागवत नामदेवजीके चरणोंमें गिर पड़ा। और तब सब पारसमणि नामदेवजीने नदीके प्रवाहमें फेंक दिया। बादमें परीसा भागवत नामदेवजीके शिष्य हो गये।

(क्रमशः)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

होनहार बिरवानके होत चीकने पात

•★•

(१)

तार्किक शिरोमणि रघुनाथ बाल्यावस्थामें ही पितृहीन हो गये थे। उनकी माता दूसरोंके घरमें धान कूटकर, रसोई बनाकर या दूसरी सेवा करके जीवन-निर्वाह करती थी। अभी रघुनाथ पाँच ही वर्षके हुए थे कि उनकी माताने आज्ञा दी—'सार्वभौम पण्डितके घरसे आग ले आओ, जिससे मैं तुम्हारे लिए चावल पका दूँ।' आज्ञाकारी बालक तुरन्त उठकर आग लेनेके लिए दौड़ गया।

सार्वभौमका एक शिष्य रसोई बना रहा था। बालकके आग माँगनेपर उसने कुटिल हँसी हँसकर चिमटेसे आगका अङ्गारा उठा लिया और बोला—'ले जा।' बालकने सोचा कि अब क्या करूँ ? परन्तु ईश्वरकी दी हुई जन्मजात प्रतिभाने साथ दिया। बालकने अपनी छोटी-छोटी हथेलियोंमें पास ही पड़ी राख भर ली और उसपर आग ले लिया। सार्वभौमकी दृष्टि पड़ गयी। उसकी तात्कालिक प्रत्युत्पन्न मति देखकर वे आश्चर्यचकित हो गये। बालकके पीछे-पीछे चलकर उसकी माताके पास गये। उसकी प्रशंसा की और उन्होंने ही बालकके पढ़ने-पढ़ाने और प्रबन्धकी सारी व्यवस्था अपने ऊपर ले ली। वे ही रघुनाथ आगे चलकर तार्किक-शिरोमणिके नामसे प्रख्यात हुए और उनके 'दीधिति' आदि महान् ग्रन्थोंको पढ़कर लोग आजकल नैयायिक बनते हैं।—सच है होनहार बिरवानके होत चीकने पात।

(२)

सार्वभौम गुरुने बालक रघुनाथको उद्यानमें-से पूजाके लिए पुष्प लानेकी आज्ञा दी। वे अज्ञान बालक पुष्प चुनकर अपनी हथेलियोंमें रखकर ले आये। गुरुजीने कहा—'तुम केलेके पत्तेमें या दोनेमें पुष्प नहीं लाये, हथेलीपर लाये, इसलिए पूजाके योग्य नहीं हैं। जाओ, धो-पोंछकर पुनः किसी पत्तेमें पुष्प ले आओ।'

रघुनाथने बड़े विनयसे प्रार्थना की—'गुरुजी ! सब-के-सब फूल हथेलीपर नहीं हैं। एक-एक फूल हथेलीपर और उनके ऊपरवाले फूल-

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

फूलपर। आप नीचेवाले फूलको केले या पत्ता या दोना समझ लीजिये और ऊपरवाले फूलोंको उठा लीजिये।' बालकके मुँहसे यह युक्ति सुनकर सार्वभौम गुरु आश्चर्य-तरंगित हो गये। आगे चलकर इन्हीं रघुनाथने न्यायशास्त्रके प्राचीन ग्रन्थोंमें विद्यमान अनेक त्रुटियोंकी ओर विद्वानोंका ध्यान आकृष्ट किया।

(३)

अध्ययनके समय चोट लग जानेसे रघुनाथका एक नेत्र फूट गया था। एकबार वे कहीं शास्त्रार्थमें सम्मिलित हुए। संस्कृतके युवा विद्वानोंने उन्हें काना देखकर तिरस्कारके साथ पूछा—'इन्द्रके सहस्र नेत्र हैं। भगवान् शङ्कर त्रिलोचन हैं और सब द्विलोचन हैं। यह भला, एकलोचन आप कौन हैं?' बिना किसी संकोच और हिचकके रघुनाथने तत्काल उत्तर दिया—'ठीक है, इन्द्र सहस्राक्ष हैं और शङ्कर त्रिलोचन हैं, आप सब विलोचन (नेत्रहीन) हैं और हम न्यायैक-लोचन हैं अर्थात् एकमात्र न्याय ही हमारा लोचन है।' प्रश्नोत्तरके श्लोकका आनन्द लीजिये—

आखण्डलः सहस्राक्षो
विरूपाक्षस्त्रिलोचनः।
अन्ये द्विलोचनाः सर्वे
को भवानेकलोचनः॥

आखण्डलः सहस्राक्षो
विरूपाक्षस्त्रिलोचनः।
यूयं विलोचनाः सर्वे
वयं न्यायैकलोचनाः॥

(४)

नदिया शान्तिपुरके राजाने एक दिन पण्डित रघुनाथ शिरोमणिसे पूछा—'आपका नाम 'शिरोमणि' है तो आप अपने सिरपर मणि धारण क्यों नहीं करते?' राजाका यह उपहास-गर्भित प्रश्न सुनकर शिरोमणि हँस पड़े और तत्काल उत्तर दिया—

यस्य सांसारिकी चिन्ता
चिन्ता चिन्तामणेः कुतः।
तयैव हि शिरःकम्पः
क्व शिरोमणिधारणम्॥

'जिसके मनमें सांसारिक चिन्ता अर्थात् भोजन, वस्त्र, आवास, औषध आदिकी चिन्ता है वह भला, चिन्ता-मणिकी चिन्ता कैसे करेगा? उसीसे उसका सिर काँपता रहता है फिर बेचारा सिरमें मणि धारण कैसे करेगा?'

तार्किक-शिरोमणि रघुनाथकी यह तात्कालिक युक्तियुक्त उक्ति सुनकर नदिया-शान्तिपुरके राजाने उन्हें बहुत-सी उपजाऊ भूमि दी, जिससे निर्वाहके अतिरिक्त विद्यार्थियोंके अध्ययन-अध्यापनका भी काम चलता था। उन्होंने न्यायशास्त्रपर तीस ग्रन्थ लिखे।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सत्साहित्य पढ़िये

पूज्य स्वामी श्री अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज द्वारा विरचित अनुपम अध्यात्मिक कृतियाँ

वेदान्त-उपनिषद् :

१. **माण्डूक्य-प्रवचन** (रु. ६.००) माण्डूक्योपनिषद् और कारिकाके आगम प्रकरणपर एक अद्भुत रचना। शांकर-अद्वैतका सुस्पष्ट, सुबोध, विलक्षण प्रतिभापूर्ण विवेचन। सरल एवं नाइलोन शैलीमें वेदान्तकी कठिन ग्रन्थियोंका भेदन किया गया है। नयी-नयी, आधुनिक युक्तियोंके द्वारा, नयी प्रक्रिया एवं साधनोंके द्वारा, ब्रह्म और आत्माकी एकताके अधिगमके लिए तत्त्वकी गम्भीर अनुभूति जिज्ञासुओंके लिए सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि है।

२. **माण्डूक्यकारिका-प्रवचन** (रु. ५.००) माण्डूक्योपनिषद्कारिकाके 'वैतथ्य-प्रकरण'पर युक्ति-अनुभूतिपूर्ण कृति मनन-प्रधान है और युक्तियोंके द्वारा आगम प्रकरणोक्त अर्थकी सिद्धि करता है।

३. **ईशावास्य-प्रवचन**—ईशावास्योपनिषद्की विशद व्याख्या। वस्तु-निरूपणकी शैलीका चमत्कार। (द्वितीय संस्करण प्रेसमें)

४. **मुण्डक-सुधा**—(रु. २.५०) मुण्डकोपनिषद्की व्याख्या। ब्रह्म-विद्याका अपूर्व स्पष्टीकरण।

५. **अपरोक्षानुभूति-प्रवचन**—(रु. ४.००) आद्य श्रीशंकराचार्यप्रणीत तथा श्रीविद्यारण्य स्वामी-कृत 'दीपिका' व्याख्यासहित ब्रह्मविद्याके साधन, विचार, निदिध्यासन आदिका उत्तम विवेचन।

६. **आनन्दवाणी भाग ६** (रु. १.००) वेदान्तके साधकों, जिज्ञासुओंके द्वारा स्वरूपसाक्षात्कारकी कठिनाइयों-सम्बन्धी पत्रोंके उत्तरोंका संकलन।

७-८. **आनन्दवाणी भाग ८ और ९** (रु. १.०० प्रति) श्वेताश्वतरोपनिषद्पर हुए प्रवचनोंका संकलन।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति-भागवत :

९. **नारद-भक्ति-दर्शन** (द्वि. सं० रु. ६.००) प्रेमाभक्तिका स्वरूप, लक्षण, प्रक्रिया, फल, अपूर्वता आदि हृदयंगम करनेके लिए अपनी सुबोध शैली, स्पष्ट भाषामें विलक्षण व्याख्या प्रस्तुत है।

१०. **गोपीगीत** (रु. ३.५०) भागवत दशम स्कन्ध अध्याय इकतीसपर प्रेमलक्षणा भक्तिका दिव्य अनुसन्धान।

*११. **गोपियोंके पाँच प्रेमगीत** (रु. ००.२०) भागवतान्तर्गत वेणुगीत, प्रणयगीत, गोपीगीत, युगलगीत, और भ्रमरगीतका श्लोकों सहित रसास्वादन।

*१२. **श्रीकृष्णके दिव्य उपदेश** (रु. ०.१०) श्रीमद्भागवतके एकादश स्कन्ध, अध्याय उन्नीस 'गुण-दोष विवेचन' श्लोक २७ से ४५ तकका श्लोक सहित अनुवाद।

*१३. **भागवत-विचार-दोहन** (रु. १.००) भागवतपर स्वतन्त्र प्रवचनोंका संकलन।

१४. **भक्ति-सर्वस्व** (रु. ५.००) महराजश्रीने अपने साधन-कालमें जिस लोकोत्तर लीला-लोकमें विहार किया एवं जिस अनुपम भक्तिका रसास्वादन किया उसकी दिव्य झाँकी इस ग्रन्थमें प्रस्तुत है। भक्तिसाधनाका मनोविज्ञान, मन्त्रानुष्ठान, उपासना, प्रेमका स्वरूप, भक्तचरित इत्यादि भक्ति-सम्बन्धी सरस लेखोंका संग्रह।

१५. **भगवान्‌के पाँच अवतार** समाप्त।

१६. **मोहन नी मोहनी** (गुजराती रु. ०.६०) श्रीकृष्णलीला, व्रज-रस तथा भावलोकका चिन्तन !

१७. **श्रीमद्भागवत-रहस्य** (तृतीय सं. प्रेसमें) भागवतके जटिल विषयोंपर शोधपूर्ण निबन्ध। सर्ग-विसर्गका सयुक्तिक निरूपण, रचनाकाल प्रस्तारित भ्रमोंका निराकरण, श्रीकृष्णलीलाका रहस्योद्घाटन तथा रसास्वादन। भक्तों एवं विचारकोंके लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री।

१८. **श्रीमद्भागवत-रहस्य** (सिन्धी) समाप्त।

१९. **आनन्दवाणी भाग ७** (रु. १.००) भक्ति-सम्बन्धी पत्रोंके उत्तरोंका संग्रह !

२०. **भक्ति-रसायनम्** (संस्कृत रु. ८.००) श्री हरिसूरि विरचित यह

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

भक्ति महाकाव्य है। श्रीमद्भागवत–दशम स्कन्ध (पूर्वार्ध) की भगवल्लीलाओंकी दिव्य उत्प्रेक्षाओंसे परिपूर्ण है।

२१. भक्ति रसायन–प्रपा (संस्कृत रु. २.००) भक्तिरसायन-महाकाव्यकी विषमस्थल–टिप्पणी।

गीता :

२२. सांख्ययोग (रु. ६.५०) द्वितीय अध्याय। त्वंपदार्थका स्वरूप, उसका साक्षात्कार, उससे प्राप्त स्थिति इत्यादिका वैज्ञानिक विस्तृत विश्लेषण।

२३. कर्मयोग (रु. ४.००) तीसरा अध्याय। कर्मका मर्म, उसकी दिव्यता, ज्ञान-भक्तिकी उलझी गुत्थियोंका निराकरण, कर्म-कौशल, प्रवृत्ति-धर्म, जीवनकला, कर्म और कर्तृत्वके विभिन्न स्वरूपोंका सूक्ष्म, स्पष्ट और ग्राह्य दृष्टिकोण प्रस्तुत है।

२४. भक्तियोग (द्वि. सं० रु. ४.००) बारहवाँ अध्याय। अनुरागरंजित ईश्वरानुभूति, हृदय-शुद्धि और रसानुभूतिका विवेचन, अनुभूतिकी गम्भीरता, सजीवता एवं हृदयग्राहितापूर्वक भावुक जनोंको परमार्थपथपर-अग्रसर होनेकी स्थिर प्रेरणा प्रदान करती है।

२५. ब्रह्मज्ञान और उसकी साधना (रु. ६.५०) तेरहवाँ अध्याय। साधनों सहित तत्त्वज्ञानका ऐसा कौशलपूर्ण प्रतिपादन है कि भ्रान्तियों और हृदय-ग्रन्थियोंका सहज भेदन होकर स्वरूपोपलब्धि होती है।

२६. पुरुषोत्तम योग (रु. १.५०) पन्द्रहवाँ अध्याय। भगवद्भक्तिके लिए अपेक्षित सम्पूर्ण साधनसामग्री, दृढ़ वैराग्यकी आवश्यकता, भजनीय ईश्वरका स्वरूप, जीवका स्वरूप, पुरुषोत्तम-तत्त्वका अद्भुत प्रकाशन।

साधना सम्बन्धी :

२७. साधना और ब्रह्मानुभूति (रु. ३.५०) विचारात्मक, परमार्थ-पथका अचूक पाथेय। सन्तोंसे उपलब्धि विषयक, साधन-मार्गको आलोकित करनेवाले हृदयस्पर्शी, प्रभावशाली प्रेरणापूर्ण निबन्ध।

**२८. श्री उड़ियाबाबाजी और मोकलपुरके बाबा (रु. ०.२०) दो विरक्त सन्तोंके सत्संग-क्षणोंके सुखद संस्मरण।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

२९. चरित्र-निर्माण आणि ब्रह्मज्ञान (मराठी रु. १.००) साधनाकी दिशा-निर्देश करनेवाले हृदयग्राही छः उत्तम कोटिके निबन्धोंका और कथाओंका संकलन ।

*३०. महाराजश्रीका एक परिचय (द्वि. सं. रु. ०.५०) स्वामीजी महाराजको संक्षिप्त जीवन झाँकी प्रस्तुत करती है—'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत' का सन्देश, प्रेरणा, उत्साह और पथ-प्रदर्शन ।

*३१. महाराजश्रीका एक परिचय (सिन्धी रु. ०.२५)

*३२. क्या साधु कुछ राष्ट्र सेवा कर सकते हैं ? (रु. ०.१०) हिन्दुत्व, और धर्मका स्वरूप, तद्विषयक भ्रान्तियोंका निराकरण, साधुओंको राष्ट्र-सेवा तथा राष्ट्र-निर्माणमें दिशा-निर्देश ।

३३-३४. आनन्दवाणी भाग १-२ (समाप्त)

३५-३६. आनन्दवाणी भाग ३ और ४ (रु. १.०० प्रति) पूज्यपाद स्वामीजी महाराजके प्रवचनोंसे प्राप्त प्रेरक, उद्बोधक, धर्म, प्रेम, सदाचार, वैराग्य, ज्ञान-सम्बन्धी उपदेशोका संग्रह ।

३७. आनन्दवाणी भाग–५ (समाप्त)

३८. आनन्दवाणी भाग–५ (गुजराती रु. १.५०) ध्यान तथा अन्तर्मुखताके लिए मानव-बोध, अभ्यासात्मक-भावात्मक-विचारोत्तेजक उद्गारोंका संग्रह ।

३९. आनन्दवाणी भाग—१० (समाप्त)

४०. **Glimpses of life divine** (Rs. 1.00) जस्टिस श्रीविपिनचन्द्र मिश्र द्वारा लिखित स्वामीजो महाराजकी संक्षिप्त जीवन-झाँकी ।

४१. **An introduction to a realised soul** (Rs. 00.25) श्रीमिश्रजी द्वारा महाराजश्रीके महान् व्यक्तित्वका एक चिन्तन ।

४२. **Import of the Impersonal** (Rs. 00 20) स्वामीजी महाराजके 'अपौरुषेयताका अभिप्राय निबन्धका स्वामी अनन्तानन्द सरस्वती द्वारा अंग्रेजी रूपान्तर ।

४३. ज्ञान-निर्झर (रु. ०.३०) श्रीडोंगरेजी महाराज द्वारा निर्दिष्ट आध्यात्मिक जीवनोपयोगी, प्रेरणाप्रद, उद्बोधक, रसमय मुक्ता-वाक्योंका संकलन ।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

केवल पुस्तक विक्रेताओंके लिए—

१. डाक खर्च अथवा रेलवे किराया आदि सब खर्च ग्राहकको देने होंगे।

२. एक बारमें सौ रुपयेकी पुस्तकें लेनेपर तीस प्रतिशत कमीशन दिया जायगा।

३. पुष्पाङ्कित* प्रकाशनोंपर कोई कमीशन नहीं दिया जायगा।

और

प्राचीन-अर्वाचीन ज्ञान-विज्ञानकी प्रतिनिधि, पुरुषार्थ प्रतिपादक, प्रसन्न-गम्भीर त्रैमासिक पत्रिका—

'चिन्तामणि'

दर्शन, भक्ति, धर्म, संस्कृत, सदाचार, कला, चरित्र-विषयक भारतके सभी प्रान्तोंके मूर्धन्य विद्वानों व महात्माओंके लेख, दृष्टान्तादिसे पूर्ण, जीवनके लिए सर्वाङ्गीण परमोपयोगी पाथेयको 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्'के रूपमें प्रस्तुत करनेवाली पत्रिका। वर्षारम्भ नवम्बर है। वार्षिक शुल्क चार रुपये मात्र। गत वर्षोंके अङ्क भी उपलब्ध हैं :—

प्रथम वर्ष सन्	१९६६–'६७	मूल्य	रु. ५–००	(एक जिल्दमें)
द्वितीय ,, ,,	१९६७–'६८	,,	रु. ५–००	(,,)
तृतीय ,, ,,	१९६८–'६९	,,	रु. ५–००	(,,)
चतुर्थ ,, ,,	१९६९–'७०	,,	रु. ५–००	(,,)

एक प्रति रु. १–२५ पैसे, नमूनेकी प्रति नहीं भेजी जाती। पोस्टेज सहित मूल्य आनेपर अङ्क भेजा जा सकता है।

अवश्य ग्राहक बनिये।

निवेदन :

'चिन्तामणि' एवं ट्रस्टके प्रकाशनोंको आप अपने मित्रों-परिचितोंमें विविध प्रकारसे प्रचारित कर सहयोग दें।

प्राप्ति-स्थान तथा पत्र-व्यवहारका पता :—

सत्साहित्य-प्रकाशन ट्रस्ट
'विपुल', २८।१६, रिज रोड, मालबार हिल,
बम्बई–६.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

तुलसी मानस प्रकाशनकी उपलब्धियाँ

१. पीस आफ माइण्ड (अंग्रेजीमें) रु. ३)

२. क्वायटर मोमेण्ट्स (अंग्रेजीमें) रु. २)

३. संसारका सार (मू. रु. ३) (हिन्दीमें) आधुनिक खेलों, वैज्ञानिक, साधनों, जीवजन्तुओं, वनस्पतियों आदिके द्वारा अध्यात्म-शिक्षा देनेका विवेचन।

४. ज्ञान-साधना (मू. रु. २) लोनावला शिविरमें पधारे हुए महापुरुषोंके ज्ञानसाधनाके प्रति संकेत।

५. विज्ञानसे ज्ञान (मू. रु. १) ऐक्सरे इत्यादि आधुनिक उदाहरणोंको लेकर अध्यात्मविद्या नवयुवकों तक पहुँचानेका सफल प्रयास।

६. वेदान्त-नवनीत (मू. रु. १–५०) सन् १९६४ के अमृतसरके वेदान्त-सम्मेलनमें पधारे महात्माओंके प्रवचनोंका सार।

७. वेदान्त का सरल बोध (मू. रु. १)।

८. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) (मू. रु. ३) ज्ञानकी गंभीर बातोंको सूत्र तथा चित्र द्वारा प्रस्तुत।

९. मुमुक्षु आध्यात्मिक उपन्यास (मू. रु. ५)।

१०. मन की शांति (पद्य) (मू. रु. ४) अंग्रेजी मूल रचना 'पीस आफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद।

११. हमारी परंपरा (मू. रु. २)।

१२. आराम सुख शांति और आनन्द (मूल्य ५० पैसे)।

१३. अपनी ओर इशारा (मू. १ रु.) अपनी ओर आनेके सूत्र रूप इशारे।

१४. आध्यात्मिक डायरी (मूल्य ५ रु.) सचित्र और दार्शनिक सूत्रोंसे परिपूर्ण दैनंदिनी।

१५. व्यावहारिक जीवन और परमात्मा (मूल्य रु. १) (प्रेस में)

१६. श्मशान यात्रा (मूल्य ५० पैसे)।

१७. मेरे १०८ गुरु (मूल्य रु. ३)।

१८. सजगता (मूल्य रु. १) (प्रेसमें)।

१९. विरोध-निरोध और स्वबोध (मूल्य रु. १) (प्रेसमें)।

२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन (मूल्य रु. १)।

तुलसी - मानस - प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केवल मार्कीटिंग कम्पनी

गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड,
बम्बई–१०

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Chintamani

English Edition

PUBLISHED BY

Satsahitya Prakashan Trust

Vipul

28/16 Ridge Road

BOMBAY—6 (W. B.)

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

EACH DAWN
HOLDS A PROMISE

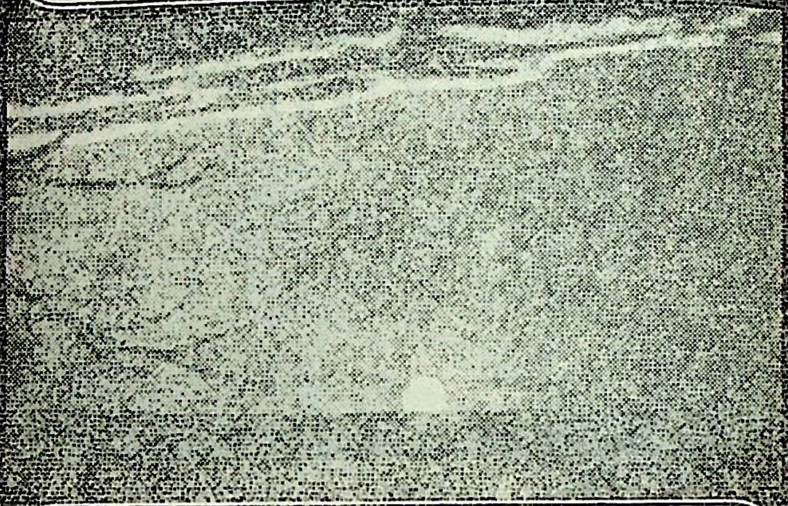

From a small beginning, we've grown.
From a small textile company...
to one of India's leading textile manufacturers.
From textiles we've moved to other fields.
Into jute, plastics, plywood, dyes, chemicals,
and more recently, petrochemicals.
Yet there's more to come.
Each day means something new.

MAFATLAL GROUP
Mafatlal House, Backbay Reclamation, BOMBAY-20 BR.

AIYARS.M.S

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SEED AND THE SOUL
(Individual)

(By Swami Akhandananda Saraswati)

In the phenomenal world there is no living being-right from the creator Brahma to tiny insect-who does not dislike sorrow and does not make an effort to escape from it. It becomes clear, if viewed analytically that unhappiness is inconsonant with our true nature and contradictory. For this reason, there is a natural distaste for death ignorance, fear etc. without being taught by parents, teacher and without any formal education, training or culture. If thoughtfully considered, there is no problem of escaping for the unhappiuess which has already passed; that which is being experienced now is also disappearing; that which is to come in future is unknown; then what is the meaning of escaping unhappiness ? Absolute freedom from sorrow or unhappiness for all times, from all things and of all sorts. The natural question in this situation is the cause of misery and the remedy for its eradication.

Pain or unhappiness starts together with the body. Misery is experienced with both birth and death, disease, separation, suffering-agreeable and disagreeable all these occur in connection with the body. Even independance and dependance is connected with it. Duty, action, state, condition are all the progeny of body. This relation with the body is the cause of unhappiness. Let us discriminate our ture nature and comprehend ourself as disctinct from the body : as नाहं नमें "Not I" "Not mine", Enough. Let whatever is being stated about the body be said. Whatever is, let it be. As it remains, let it remain, This is not mine. I am, seen, witness unattached, passive or neutral. I am not miserable with

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

body's misery neither happy with body's happiness. Material body's death does not touch me. Its diseases and enjoyments do not touch me. I do not follow its control or opposition. It's fatigue and delusion does not disturb, my peace, The material cause of misery is acceptance of body as "I" and "mine" अहम्मानादुत्पत्तिर्द्वंव्यदर्शनम् Its meaning is body is sorrow and to accept it as "I" or in the form of "I" is the basis. When the material cause itself in absent where will the manifestation be? अशरीरं वाव सन्तं प्रियाप्रिये न स्पृशतः Certainly, with bodilessness agreeable and disagreeable do not touch the Eternal.

Now listen, from whence has the body come? Rejecting "I"—"Mine" where will it go? What guarantee is there that there will not be the repettition of the same relation with this body again? Let the body be made from one element or many, the formation and construction of material constituents can not be but a result of virtue and vice. Merit and demerit is a result of action. Action is formed by body. In that case, the succession of body can never be distroyed; because just as the previous proper or improper actions have been done and are being done will continue to be done. From body to action from action to body. These two similar to seed and tree have come from an uninterrupted succession without origin. Then is the life of an individual soul a seed life? No! No! there is a difference of heaven and earth between the seed life and the individual life. The individual soul is indestructible conciousness and a seed is destructible matter, come, let us once compare them both.

There is a seed in your hand. Can you recognise of what tree or fruit it is? If affirmative, then you can imagine its past and future form just by seeing it; how it has passed from root, sprout, stem, branches, leaves, flowers. If now sown again it will take similar form. Can all these be perceived in this seed? No, but all these are inherent in the seed. Seed needs earth, water, heat, light, air, and space all these-field, fertiliser, irrigation. It will be moist swell,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
sprout and grow. It requires space and time. Inspite of all this, it will manifest its form, colour, teste according to its nature. Seed has followed its uninterrupted sucession without begining. It has obtained inside out, up-down motion all through. So long this will continue as long as its seedness is not destroyed by fire.

Now please take an individual soul on your imaginary palm. There in exists a specific form of individuality. It also requires time for its evolution and involution. Space is necessary for appearance and disappearence. Substance is required for constructing varieties of forms. This appearance-disappearance birth-death, and change in form occur in relation with action. Without action raising-falling, living-dying or going-coming can not occur. Only one substance can not change into manifold forms without action. This action alone is called in practical world as reaction or manifestation which produces by a specific process a series of phenomenal forms. This action, because it is performed in this individual world with a sence doership assumes a specific desire generated impression of the memory; thereby it is designated as righteous or unrighteous. Preponderance of consoiusness constitutes soul (Individual) and preponderance of matter a seed. Letter V in Jiva or individual soul suggets its inwardness and Letter B in Bija or seed its outwardness. Seed is the means of creation only, but soul of both creation and reason. Energies of seed remain in material substances alone and these of the soul in both material and mental. Outer and inner instruments of soul remain conscious but instruments of seed are unconscious. Creation of virtue and vice is absent in seed. But soul because of its being the basis of evidential thought and freedom in action becomes the critetion of virtue and vice. Seed is preponderently the enjoyable part but soul is predominantly the enjoyer. Therefore soul's happiness and misery are perceptible and those of seed inperceptible. Soul through its proper and improper behaviour is capable of raising itself up or fall down, but seed is subservient to its natural flow.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Living being also, in the phenomenal realm, are of three types, rising current (Plants), oblique current (animals), falling current (human) beings. Usually first two have material predominance bereft of virtue and vice. But in those having the current flowing downwards (human beings) are complete in natural evolution or progress. He eats from above and crows below. This human species is like this. This species is completely adequate for manisfestation of action, knowledge, and love; because for achieving new formulations of activity hand and other organs, for ever new discoveries the intellect, and for experiencing happiness expansion of love is clearly seen. This spceies is fully competent for experiencing the states of existence, knowledge and bliss. The human being can hold the impressions of knowledge and action in his mind and accomplishment of pre-existent wisdom is also observed. Therefore, full responsibility of righteousness and unrightousness is evident in human beings alone,

By unrighteous behaviour souls' descipline over the body, organs and mind becomes slack; for this reason it comes under the guidance of phenomenal nature by being born as plants, bugs, eggs, or animals born of wombs other than bipe human being having two hands. With righteous behaviour body organs and mind get purified and with increased disci pline accomlished fitness to enter the divine realm is obtained. Even in the divine realm in the begining there is increas of sensual happiness only. But by reflecting on one ideal a oneself divine bliss connected with the ideal other than sensual manifests. There is a variety in the resulting divine bliss due to manifold Mantra (word for repetition) methods and practices. And in devotional field due to one ideal, Mantra, method and conviction in concentration predominantly emotional holyness manifests. The self-effulgent conciousness, a witness of mind (innerinstrument) is in no way connected with space, time and substance. By controlling mentations this perceiver alone establishes in its own natural self. Then it emancipates from appearance and disppearance in space, birth and death in time, change of species in substance. Being

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS
detached from conditioning adjuncts this perciver rests in its own nature at that time. But when the absorption of the mind dissolves it again forms mentations. Therefore, with the control of mentations its descipline, birth and death etc. also becomes possible. But after the knowledge of oneness of the Atman and Brahman (Consciousnace underlying indivi. dual and universal consciousness) as stipulated in Vedanta, space and time are invalidated meaning their falsity is determined. Then birth and death of an individual soul are completely and finally eradicated. As long as mentations are taken as true and identifications with them remain intact, so long the reality of difference of manifold perceivevs and the separtiness of God no one can resolve. For this reason the succession of birth and death will continue. Seedness being material despite it being without begining is destructible by material fire; but an individual soul being spirit or conscious is not destructible by physical fire. It is identified through ignorance with mentations originally resulting from impressions of desire seeds. Therefore, without destroying by the fire of knowledge the individuality of the separate can not be eleminated. Individual soul is conscious, its living vitality is without begining and infinite. It holds within its purview space time and substance. Appearence of space, time and substance is refutable and consciouness in its own nature is irefutable or uncontradictable. In the realm of experience our nonexistence has no place. No one can ever experience that he does not exist. Therefore, the life of an individual is in essence infinite and nondual. It in its own imagination identifying, with apparent time belives itself to be eternal, with the apparent space believes to be all-pervading and with the apparent substance belives to be all-inclusive. Really, eternality, all-pervasiveness, and all-inclusiveness are also not its proper nature, but due to idntification with imaginary appearances. Ground cansciousness is really the proper own nature of the individual and in it there is not even a tinge of duality. Refutable appearance has no value whatever. Really, seedness and individuality are

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

due to ignorance. Existence of seed and existence of individual are non-separate from the existance of indivisible censciousness alone.

Let us once again return to the first problem. Why should multiplicity arise is any one substance ? Reaction or Action. Reaction is ordinary or natural, but action is accomplished by an actor. Action presupposes virtue or vice, because at the bottom there is a desire to obtain or reject. Desire to obtain has at its root the superimposition of the good and desire to reject has at its root the superimposition of the bad. With the firmness or slackness of this desire proper and prohibited action is performed. Superimposition is due to ignorance. For this reason so long as ignorance remains as long the superimpostition will remain and so long as that remains as long the wheel of birth and death will not cease because of non-cessation of desire. To undo this wheel there is need for the knowledge of Vedanta. If due to predominence of time, birth and death; due to space appearance-disappearence; due to predominence of substance change of species; if result of action was not regulated by God and if this ignorant individual was not compelled to enjoy the fruit, then there would be no necessity for knowledge resulting from the principal statement of 'That Thou Art' etc. and hearing, thinking, and contemplaiing of Vedanta would be futile. For eradicating this there is necessity of the knowledge of the oneness of sprit (Brahma) and soul (Atman).

Shri Gavdapadachara Maharaj, who has been referred to as 'expert in Tradition' by Shri Shankaracharya in his commentary on Brahma Sutra and as "natuer in the essence of Vedanta" by Shri Sureshwaracharya repeatedly in his works states:—

यावद्धेतुफलावेशः संसारस्तावदायतः ।
क्षीणे हेतुफलावेशे संसार न प्रपद्यते ॥

"As long as there is faith in causality, the (endless) chain of birth and death will be there. When that faith is destroyde (by knowledge) birth and death become non- existant."

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

By not recognising Atman (Soul) as Brahma (Universal Spirit) meaning free from space, time, substance, divisions and differences of species, genus or existing in itself, it is accepted that I am the actor of virtye and vice and enjoyer

Smoking, a big killer

London. Jan. 5.

Britain's influential Royal College of Physicians said yesterday cigarette smokers were twice as likely to die ni middle age as non-smokers and that two out of every five heavy smokers die before the age of 65.

In a report "smoking and health now" the college said cigarette smoking was now as big a killer as typhoid. cholera and tuberculosis were for earlier generations.

The children of pregnant women smokers, the report said were born five or eight ounces lighter and the mothers were more likely to have miscarriages or premature births than were nonsmokers.

The college founded in 1518 called on the Government to ban all cigarette advertising and gift coupon schemes and to print warning notices on cigarette packets as in the United States.

The college asked employers and trade unions to bring in wider smoking restrictions at work and the Government to cut down smoking facilities in places of entertainment and on public transport.

of happiness and misery, then the worldly existence or transmigration of birth and death progress only. When with the knowledge of the oneness of Spirit (Brahma) and soul (Atman) the ignorance-generated actorship, enjoyerhood metempsychosis (Transmigration), divisibleness ect. are invalidated then only birth-death, re-incarnation etc. and

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

futile worldly existance are eradicated. Therefore, to disbelieve re-incarnation and transcendental life prior to the knowledge of Truth is forfeiting the Vedanta knowledge and beguiling oneself in utter futilily.

The fact is entirely according to Vedanta and completely reasonable that the life of the individual soul is indivisible consciousness as existence alone. The delusion of difference is due to ignorance only. Entire defference is only apparent. Difference is not really true. Our Atman (True Self) is the basis or ground. Finally a Veda Mantra is quoted for your contemplation :—

यथा ह्ययं ज्योतिरात्मा विवस्वान् अपो मित्रो वह्यैकोऽनुगच्छन् ।
उपाधिना क्रियते मित्ररूपो देवः क्षेत्रेष्वेवमजोऽयमात्मा ॥

"Ust as the effulgent Sun, due to conditioning adjuncts, reflects in water in manifold forms; so the shining Atman, inspite of its being unborn, as if desires to manifest into varieated forms of innumerable species"

WE MANUFACTURE & EXPORT THROUGHOUT THE WORLD

- Castor oil All Grades,
- Dehydrated Castor Oil,
- Dehydrated Castor Oil Fatty Acid,
- Castor Oil Fatty Acid,
- Blown Castor Oil,
- Gelled Castor Oil,
- Heptaldehyde,
- Undecylenic Acid B. P.,
- Zinc Undecylenate, Etc.

Trade enquiries solicited

Jayant Oil Mills & Jayant Oil Products Private Ltd.

13-Sitafalwadi, Mount Road, Mazgaon,
Bombay--10, India.

Phone : 373441-2-3 Telex : 2677
Grams : SWEETOIL, BOMBAY.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ यो ह वै श्रीरामचन्द्रः स भगवानद्वैतपरमानन्दात्मा यत्परं ब्रह्म भूर्भुवः स्वस्तस्मै वै नमो नमः ॥

—श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषत्

लालजीमल टीकाराम

हाथरस

फोन नं० : १२९ तार : GANESH

•

शाखाएँ :

कटरा लेहस्वा, चाँदनी चौक

दिल्ली–६

फोन नं० : २६६९६४ फोन नं० घर : २२८१३७

तार : RAMAPATI

•

दुकान नं : ९६

तीसरी गली, मङ्गलदास मार्केट

बम्बई–२

फोन नं० : ३१०९४० फोन नं० घर : २९००८१

तार : KAUSHLESH

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

For Your Requirements :

Of

INDUSTRIAL FURNACES

(Electric, Oil or Gas Fired)

Please Contract :

BOMBAY FURNACES PRIVATE LIMITED

5, Stadium House,

Veer Nariman Road,

BOMBAY—1.

Telephone : 295925 *Telegram :* LACOIP

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐसहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।
अन्यो अन्यमभिहर्यंत वत्सं जातमिवाघ्न्या ॥

मैं आप लोगोंमें सहृदयता, मानसिक पवित्रता और राग-द्वेषराहित्यकी प्रतिष्ठा करता हूँ। जैसे अवध्य गाय अपने छोटे-से बछड़ेसे स्नेह करती है, वैसे ही आप सब परस्पर एक दूसरेसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करें।

श्रीपूर्णवस्त्रभंडार

२२२ नवी गली, मंगलदास मार्केट

बम्बई—२

बाम्बे डाइंग एण्ड मैन्यूफैक्चरिंग कम्पनी

बम्बई

के

(फेन्ट) कटपीस वस्त्रके थोक विक्रेता

शुभ कामनाएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best compliments from :

T. K. STEEL INDUSTRIES PRIVATE LTD.

Structural Engineers and Fabricators.

Office :

229, Sant Tukaram Road,
Iron Market,
BOMBAY-9.

Factory :

Plot No. 7, D-1, Block,
Pimpri Industrial Area, Chinchwad,
POONA-19.

Telegram : "GIRDERS"

Phone : 320521

Telex : TEEKAYS BY-3207

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH

BEST

COMPLIMENTS

From :

The Master Silk Mills Ltd.

BHAWNAGAR-1,

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best compliments from :

The Mahavir Printing Works,

Sambava Chambers,

SIR PHEROZESHAH MEHTA ROAD

FORT : BOMBAY-1

Phone : 262785

With Best Complements

FROM

BRITISH PHARMACEUTICAL LABORATORIES

Manufacturers of Pharmaceuticals

BOMBAY—2.

BPL

Sole Distributors :

Messrs.

BIPCO SALES CORPORATION,

ANAND BHAWAN, 2ND FLOOR,

Princess Street,

BOMBAY-2

Stockists

Messrs.

BENJAMIN & SADKA,

ANAND BHAWAN,

Princess Street,

BOMBAY-2.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best Compliments from :

"MOUNT UNIQUE"
11th Floor, Block 86,
Pedder Road, Bombay 26.

Chhotalal N. Shah

10, Audiappa Naick St
Sowcarpet, Madras 1.
Phone : **33325**

KANJI JADHAVJI & CO.

Masjid Bridge, Bombay 9

KARACHI • CUTH MANDVI • CUTCH KANDLA
GANDHIDHAM • OKHA

Freight Brokers, Stevedores & Landing
Contractors to :

THE
SCINDIA STEAM NAVIGATION CO., LTD.

Agents to :
INTERNATIONAL AIR TRANSPORT ASSOCIATION
INDIAN AIRLINES CORPORATION

BOOKING OPEN DAY & NIGHT

Grams "GITA" *Phones* : 323681/87

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best Complements from

Bombay Oil Industries Pvt. Ltd.

Manufacturers of :

Saffola

Cocovite

and

Parachute Brand

Filtered & Refined Cooking Oils

and

'Everest'

Brand Stearic Acid

★

KANMOOR HOUSE

BOMBAY - 9 BR

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

महानगरों के विकास के लिए

'राकफोर्ट' मार्का

डालमिया पोर्टलैण्ड एवं पोज़ोलाना सिमेंट

निर्माता :

डालमिया सिमेंट (भारत) लिमिटेड

डालमियापुरम् (तामिलनाडु)

तथा

लोह-अयस्कके निर्यातक

एवं

'कोणार्क' मार्का डालमिया पोर्टलैण्ड सिमेंट

'ओसी' मार्का डालमिया पोज़ोलाना सिमेंट

निर्माता :

उड़ीसा सिमेंट लिमिटेड

राजगंगपुर (उड़ीसा)

तथा

रिफ्रैक्टरीज एवं प्रोस्ट्रैस्ड सामानके उत्पादक

DALMIA ENTERPRISES

मुख्य कार्यालय :

४–सिन्धिया हाउस, नयी दिल्ली–१

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With best compliments :

Gram : Phone : *Show Room* : 356497
Residence : 357015

PRANSUKHALAL BROTHERS

JEWELLERS

Agt.—Mrs. D. D. Vasudeva
7 New Queens Road, Opera House,
BOMBAY-4.

With best compliments :

Grams : 'SHOWINDOW' *Phone* : 352725

Bhagat Brothers

JEWELLERS & DEPARTMENT STORE

Patel Chambers
Sandhurst Bridge
BOMBAY-7.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

For all Types

OF

Electric wires and cables

Raval & co.

LARGEST STOCKISTS OF

I.C.C. PARAMITE+C.C.I. TROPODUR+L.T. & H.T.
WIRES AND CABLES TRAILING FLEXIBLES &
CONTROL CABLES A SPECIALITY

HEAD OFFICE :

SHREEJI BHUVAN, LOHAR CHAWL
POST BOX No. 2279
BOMBAY-2

PHONE 23720, 20233, 28426

Grams : Godspeed

Branch Office :

12—B, LOWER CHITPUR ROAD,
CALCUTTA--1

Phone : 345651

Grams : YOURCHOICE

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Well Known Products

- BHARAT VELVET
- BHARAT TERENE SUITINGS
- BHARAT TERENE SHIRTINGS
- NYL-ON TERENE SAREES & BUSH SHIRTING

Manufactured by :—

BHARAT VIJAY VELVET & SILK MILLS

Proprietors :

The Aditya Textile

Industries Pvt. Ltd.

Kurla Andheri Road,

Bombay—70

Phone 55146/47

शुभकामनाओं के साथ

मगनलाल ड्रेसवाला

[भारतके अग्रणी वेशभूषाकार]

लग्नादि शुभ अवसर पर बनारसी, जरी भरत और सिल्कन साड़ियों वगैरहके लिए।

कापड़ विभाग :
७३–७७ भूलेश्वर रोड,
बम्बई-२

गरबा, नृत्य, नाटिका, स्कूल-गेधरींग वगैरह कार्यक्रम पर आवश्यक सब प्रकारकी वेशभूषाके लिए।

ड्रेस विभाग :
जय हिन्द एस्टेट नं० १
भूलेश्वर रोड
बम्बई-२

फोन :
३१०००९

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

WITH

BEST

WISHES

From :

CHMPAKLL & BrOS.
Private Ltd.

Cotton

&

Textile Waste Exporters

•

Phone : 25 - 3215

Gram : WASTEPAPER

Codes : A.B.C. 6th Bentley's 2nd

Bentley's Complete and Private

•

Registered Office

45-A, Yusuf Building

49, Veer Nariman RD.,

Fort, Bombay.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS.

"ॐ भूरसि भूमिरस्यदितिरसि
विश्वधाया विश्वस्य भुवनस्य धर्त्री।
पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृंह पृथिवीं मा हिंसीः॥"

—यजुर्वेद २२।२२

"हे बड़ी माँ! तुम सम्पूर्ण सुखोंकी दाता हो। तुम्हारा स्वरूप विशाल है। तुम स्वयं देवता हो और देवताओंकी माता हो। तुम सम्पूर्ण विश्वको अपने उदरमें धारण करती हो और उसका भरण-पोषण करती हो। सब प्राणी तुम्हारी गोदमें रहकर तुम्हारा ही दूध पीते हैं। तुम अपनी विशालताको और बढ़ाओ, अपनेको और दृढ़ करो और अपने-आपको कभी क्षीण मत करो।"

फोन—39736

तार—RAIBANSI

दि चिरीमिरी कॉलिअरी कम्पनी प्राइवेट लिमिटेड

१८।२२ शेखमेमन स्ट्रीट

बम्बई—२

की

शुभकामनाएँ

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

ALUCOIN
ALUMINIUM IS USED EVERYWHERE TO-DAY

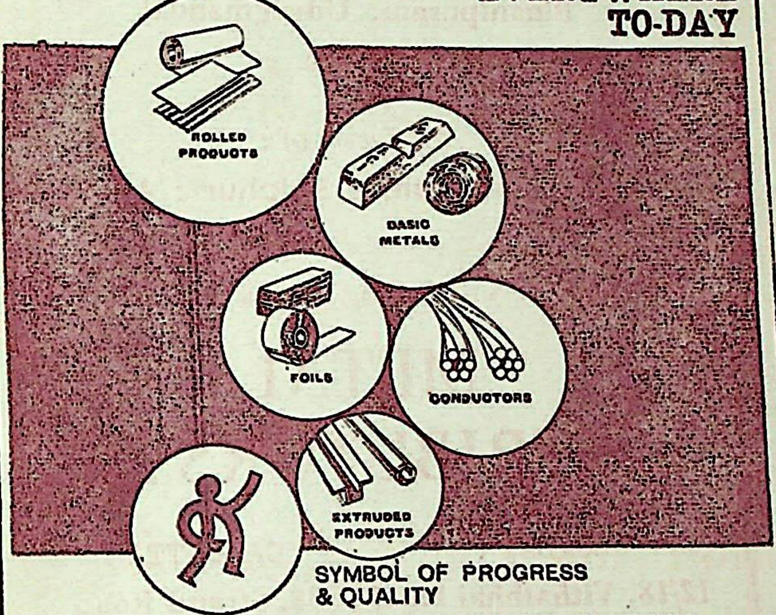

SYMBOL OF PROGRESS & QUALITY

BASIC METALS—PURE AND ALLOY INGOTS, EC GRADE WIRE BARS & WIRE RODS
ROLLED PRODUCTS—PLATES, COILS, PLAIN AND CORRUGATED SHEETS, CIRCLES CONTAINER SHEETS.
FOILS—FOILS FOR TEA CHEST LININGS, CIGARETTE & PHARMACEUTICAL FOIL, TAGGER FOIL & VARIOUS OTHER PURPOSES.
EXTRUDED PRODUCTS—BARS, PIPES, ANGLES CHANNELS, BEAMS OTHER SECTIONS OF VARIOUS SHAPES & DESIGNS.
CONDUCTORS—ACSR, AAC (CABLES)

ALUCOIN

ALUMINIUM CORPORATION OF INDIA LIMITED

(The first Aluminium Producers in India from Indian Bauxite)
7 COUNCIL HOUSE STREET, CALCUTTA-1.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

With Compiments from :

Cominco Binani Zinc
Limited.

Binanipuram, Udyogmandal
KERALA

Producers of :
Zinc, Cadmium & Sulphuric Acid

Sole Selling Agents :

METAL
DISTRIBUTORS Ltd.

BOMBAY :
12/18, Vithalbhai Patel Road.

CALCUTTA :
38, Strand Road.

KOTA :
Kansua Road.

MADRAS :
68/2 Mowbrays Road.

MIRZAPUR :
Dhundi Katra.

NEW DELHI :
4D Nizamuddin West.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

SPECIAL STEELS LIMITED.

Manufacturers of :

Steel Wires.

HIGH CARBON • MEDIUM CARBON
LOW CARBON • ALLOY STEEL
STAINLESS STEEL • ETC.

Registered Office & Factory.

Dattapara Road,
Borivil (East),
BOMBAY—66 NB.

Phone : **662421**

Telex : **2652**

Grams : DRAWNWIRES.

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

सीमेंट के बारे में जानना है तो पूछिये —

एसीसी

ACC
the hallmark of
top-quality products

एसीसी सीमेंट बनाने वाली पहली कंपनी है जिसने सीमेंट बनाने के लिए एक लाभप्रद प्रक्रिया अपनाकर अनुपयुक्त चूने को उपयुक्त कच्चे माल के रूप में बदल दिया है। इससे खनिज साधनों का अधिक से अधिक बचाव संभव हो सका है। वर्षों से एसीसी के इंजिनियरों और शोधकर्ताओं ने ऐसे स्वदेशी माल का उपयोग कर नये—नये उत्पादनों का निर्माण किया है, जो अन्यथा बेकार पड़े रहते। एसीसी उत्कृष्टता पर सर्वाधिक बल देते हैं। तभी तो उसने सीमेंट और कांक्रीट टेक्नालाजी में एक शोध केन्द्र की स्थापना की है, जो भारत में अपने ढंग का पहला है। सीमेंट और कांक्रीट के उपयोग के बारे में तकनीकी सलाह मुफ्त में दी जाती है। सीमेंट के बारे में आपको जो भी जानकारी चाहिए—एसीसी से पूछिये।

प्रे पोर्टलैण्ड सीमेंट ▪ पोज़ोलाना सीमेंट ▪ ब्लास्ट फर्नेस स्लैग सीमेंट ▪ लो हीट सीमेंट ▪ ऑइलवेल सीमेंट ▪ शीघ्र सख्त होने वाला सीमेंट ▪ सिल्वीक्रीट व्हाइट सीमेंट

- रिफेक्टरियां (यानी हाई अल्युमिना फायर ब्रिक्स) तथा रिफेक्टरी पदार्थ
- हेवी मशीनरी जिनमें रोटरी भट्ठी, स्टोनक्रशर, ईओटी क्रेन्स, बाल व ट्यूब मिल्स तथा सीमेंट, रासायनिक व अन्य उद्योगों के लिए कनवेयर उपकरण शामिल है।
- रेजिंग आफ कोल
- भूगर्भ संबंधी सलाह सेवा

एसीसी दि एसोसिएटेड सीमेंट कम्पनीज लिमिटेड
दि सीमेंट मार्केटिंग कम्पनी आफ इंडिया लिमिटेड

SISTA'S CMI.404 HIN

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

excitingly–
exclusively–
exquisitely–

Khatau

voiles

Ask for 'Cum-Cum' and a matching 'Kashmira' blouse.

THE KHATAU MAKANJI SPG & WVG. CO. LTD., Head Office Laxmi Building, Ballard Estate, Bombay-1. Mills: Haines Road, Byculla Bombay-27 Wholesale Clothshop Govind Chowk, Mulji Jetha Market, Bombay 2. Retail Stores Hashim Building, Veer Nariman Road Bombay-1 Ganesh Wadi, Sheikh Memon Street, Bombay 2 Mills Premises, Haines Road, Bombay 27

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi.

Digitization by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

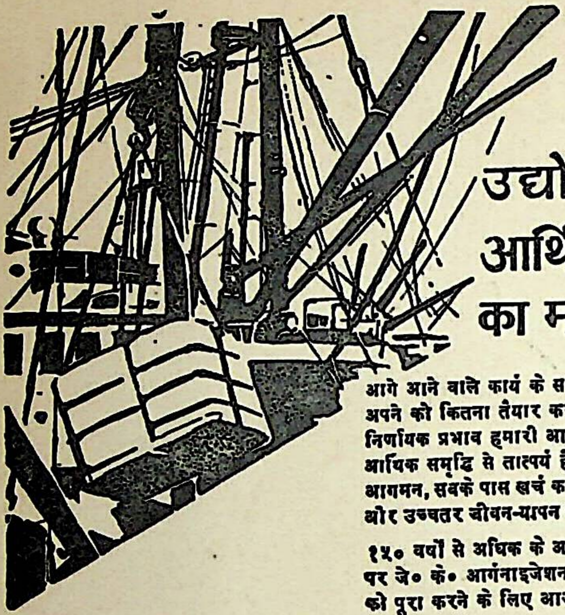

उद्योग—आर्थिक समृद्धि का मापदंड

आगे आने वाले कार्य के सम्पादन के लिए हम अपने को कितना तैयार कर पाते हैं, उसी का निर्णायक प्रभाव हमारी आर्थिक समृद्धि पर पड़ेगा। आर्थिक समृद्धि से तात्पर्य है—अच्छे दिनों का आगमन, सबके पास खर्च करने को साधनों की सुलभता और उच्चतर जीवन-यापन की सुविधाओं की प्राप्ति।

१५० वर्षों से अधिक के अपने अनुभवों के आधार पर जे० के० आर्गनाइजेशन आर्थिक समृद्धि के लक्ष्य को पूरा करने के लिए आज पूर्ण सुसज्जित है।

अपने विभिन्न प्रकार के उद्योगों के विकास के साथ ही जे० के० आर्गनाइजेशन नये प्रयासों में भी लगा है, ताकि अधिकाधिक रोजगारी के अवसर प्राप्त हो, स्व-चालित अर्थ-व्यवस्था की ओर हम अग्रसर हो सकें, जिससे नये युग का सूत्रपात होगा।

जे.के. ऑरगनाइज़ेशन

भारत का एक विशालतम औद्योगिक और व्यावसायिक संगठन

कानपुर • बम्बई • कलकत्ता

सत्साहित्य-प्रकाशनट्रस्ट, बम्बईके लिए विश्वम्भरनाथ द्विवेदी द्वारा सम्पादित एवं प्रकाशित तथा आनन्दकाननप्रेस, सीके. ३६/२० वाराणसीसे मुद्रित।

CC0. In Public Domain. Sri Sri Anandamayee Ashram Collection, Varanasi